श्रीदुर्गा सप्तशती

भाषा-भावानुवाद सहित

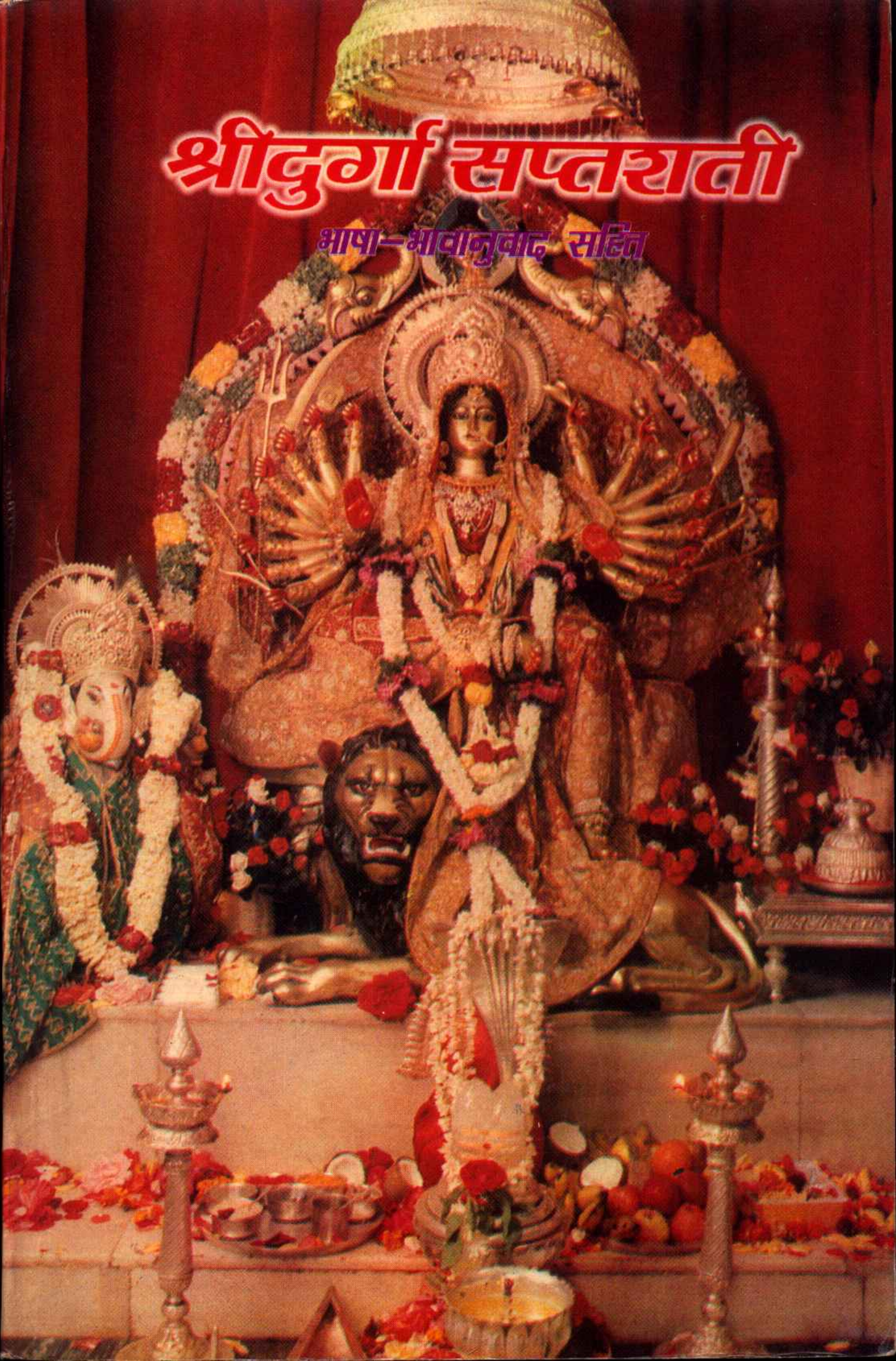

श्रीदुर्गा सप्तशती

मूल पाठ एवं भाषा-भावानुवाद

संत नागपाल

काव्यरूपान्तर

श्याम सुन्दर शर्मा 'साक्षी'

ब्रह्मलीन श्रीदुर्गाचरणानुरागी बाबा संत नागपाल
संस्थापक
श्री आद्या कात्यायनी शक्तिपीठ मन्दिर
छत्रपुर, नई दिल्ली-११० ०३०

श्रीदुर्गा सप्तशती

मूल पाठ एवं भाषा-भावानुवाद

संत नागपाल

काव्यरूपान्तर

श्याम सुन्दर शर्मा 'साक्षी'

ब्रह्मलीन श्रीदुर्गाचरणानुरागी बाबा संत नागपाल
संस्थापक
श्री आद्या कात्यायनी शक्तिपीठ मन्दिर
छत्रपुर, नई दिल्ली-११० ०३०

प्रकाशक
प्रकाशन प्रकोष्ठ
श्री आद्या कात्यायनी शक्तिपीठ मन्दिर,
छत्रपुर नई दिल्ली-११० ०३०

(सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन)

चतुर्थ पुष्प
प्रथम संस्करण - २००० प्रतियाँ
चैत्र नवरात्र, १९९९

द्वितीय संवर्धित संस्करण - २००० प्रतियाँ
आश्विन शुक्ल दशमी, सं० २०५६
विजयादशमी, शारदीय नवरात्र, १९९९

मूल्य - श्रद्धामात्र

मुद्रक
पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी प्रा० लि०
८८८, ईस्ट पार्क रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-११० ००५

निवेदन

प्रातःस्मरणीय परमपूजनीय श्री दुर्गाचरणानुरागी बाबा संत नागपाल जी की हार्दिक इच्छा थी कि श्री दुर्गासप्तशती की जानकारी सभी श्रद्धालुओं एवं जनसाधारण तक पहुँचे, लोग इसकी गहराइयों को समझें और इसका पाठ घर-घर में प्रचलित हो। दो-तीन दशक पूर्व पूजनीय बाबा जी ने स्वयं श्रीदुर्गासप्तशती का हिन्दी पद्यानुवाद किया था ताकि इसके सारगर्भी कथानक को केवल विद्वान ही नहीं, अपितु सभी समझ सकें। इसे 'जय माँ दुर्गे' के नाम से प्रकाशित किया गया था, परन्तु अब इसकी प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। कुछ समय पूर्व पूजनीय बाबा जी ने इच्छा व्यक्त की थी कि अनुवाद को और सटीक बनाकर इस प्रकार से छापा जाए कि श्लोक और उसका अनुवाद आमने-सामने हों ताकि संस्कृत भाषा न जानने वाले भी श्लोक का अर्थ समझ सकें। शक्तिपीठ के *प्रकाशन* प्रकोष्ठ ने इस आज्ञा को शिरोधार्य कर उसका कार्यान्वयन आरम्भ कर दिया।

प्रथम चरण में सभी स्तुतियों के हिन्दी पद्यानुवाद को संगीत-मार्तण्ड श्रीछोटेलाल जी ने स्वरबद्ध किया और श्री कात्यायनी महिला मंडल ने अपने मधुर स्वर में इसके गायन का अभ्यास कर जब पूजनीय बाबाजी को पहली बार सुनाया तो वे भावविभोर हो उठे और उनके नेत्रों में जल भर आया। उनकी आज्ञानुसार यह कार्यक्रम शक्तिपीठ के हर आयोजन का अनिवार्य अंग बन गया। भक्तजनों के घरों में भी इसका आयोजन होने लगा। श्री कात्यायनी प्रकाशन प्रकोष्ठ ने इसे पुस्तक रूप में **'मातृ-स्तुति'** के नाम से प्रकाशित किया।

पद्यानुवाद के पूरा होते ही पाण्डुलिपि को पुस्तक का स्वरूप देकर पूजनीय बाबा जी के समक्ष प्रस्तुत किया गया तो उन्होंने इसे आशीर्वाद देकर श्रीमाँ के चरणों में समर्पित करने का आदेश दिया। तत्पश्चात उन्होंने यह इच्छा प्रकट की इस पुस्तक में माँ के सौम्य रूप की महिमा के प्रख्यात स्तोत्र *श्रीललितासहस्रनाम* को भी जोड़ दिया जाए। यह कार्य हाल ही में सम्पन्न हो पाया।

इस पावन कार्य में बहुत से विद्वान-भक्तों व कर्मयोगियों का सहयोग प्राप्त हुआ, जिनमें सर्वप्रथम हैं संगीत-मार्तण्ड श्री छोटेलाल जी 'मधुपश्री' तथा उनके शिष्य श्री श्याम सुन्दर शर्मा 'साक्षी'। साक्षीजी ने श्रीदुर्गासप्तशती का गहन अध्ययन कर सटीक हिन्दी पद्यानुवाद के कठिन कार्य को सम्पन्न करने

में जो भगीरथ प्रयत्न किया उसके लिये हम सदैव उनके आभारी रहेंगे। प्रत्येक श्लोक पर विस्तृत चर्चा की गई और विशुद्ध भावानुवाद पर विशेष बल दिया गया। इस कार्य में अनन्त श्रीविभूषित स्वामी शारदानन्द जी महाराज का पूर्ण आशीर्वाद रहा। डॉ० स्वामी महेश्वरदेव जी, आचार्य श्रीराम शास्त्री जी एवं आचार्य विज्ञानन्द उनियाल ने अत्यंत कृपाकर अपना सतत सहयोग व मार्गदर्शन दिया जिनके हम आभारी हैं। कम्प्यूटर पर लिपिबद्ध व पृष्ठबद्ध करने के कठिन कार्य को दिनरात लगकर सकुशल सम्पन्न करने के लिए श्री बिशम्भर सिंह विशेष धन्यवाद के पात्र है। इसके अतिरिक्त जिनसे विशेष सहयोग तथा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ उन्होंने अपना नाम न देने का विशेष आग्रह किया है। हम सदैव उनके ऋणी रहेंगे।

इस प्रथम संस्करण को अतिसीमित इसलिये रखा जा रहा है कि इसमें जो भी त्रुटियाँ व कमियाँ रह गईं हों उन्हें मातृ-परिवार के सदस्य तथा पाठकगण बताकर हमें अनुग्रहीत करें ताकि अगले संशोधित संस्करण में उन कमियों को दूर किया जा सके।

श्रीमाँ के चरणों में अर्पित इस चतुर्थ पुष्प को, पूजनीय बाबाजी के प्रति श्रद्धा-सुमन के रूप में, आपके समक्ष सहर्ष प्रस्तुत करते हुए,

आपका
प्रकाशन प्रकोष्ठ
श्री आद्या कात्यायनी शक्तिपीठ मंदिर

द्वितीय संवर्धित संस्करण

प्रथम संस्करण के प्रति श्रद्धालुओं ने जो उत्सुकता दर्शाई उससे उत्साहित होकर द्वितीय संस्करण का कार्य आरम्भ किया गया। कुछ विद्वान भक्तों के सुझाव पर देवी-अथर्वशीर्ष, तीनों रहस्यों तथा मानस-पूजा को भी सम्मिलित करने का निर्णय लिया गया। इनके पद्यानुवाद के साथ अब यह द्वितीय संवर्धित संस्करण आपके समक्ष सादर प्रस्तुत है।

आपका
प्रकाशन प्रकोष्ठ
विजयादशमी सं० २०५६ — श्री आद्या कात्यायनी शक्तिपीठ मंदिर

श्रीदुर्गासप्तशती का माहात्म्य

वर्तमान युग में श्रीदुर्गासप्तशती का विशेष महत्व है। आज का मानव अत्यंत व्यस्त है और विशेषकर युवा पीढ़ी तो पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से इन्द्रिय-उत्तेजना के मार्ग पर खिंची जा रही है। इसका परिणाम है बढ़ता असंतोष तथा मानसिक अशांति। इनसे प्राणशक्ति में असंतुलन उत्पन्न होता है तथा भौतिक शरीर पर इसका दुष्परिणाम मनोकायिक (साइकोसोमैटिक) व्याधियों के रूप में प्रकट होता है। एलोपैथी में उपचार भी केवल मनुष्य के बाहरी चोले, अन्नमय कोष (भौतिक शरीर) का होता है, जब कि रोग की जड़ भीतरी प्राणमय कोष में या इससे भी गहरे मनोमय कोष या विज्ञानमय कोष में होती है। इस प्रकार से दबाए जाने पर रोग अन्य किसी रूप में अंकुरित हो उठता है। हताश और निराश होकर मनुष्य जब अध्यात्म का आश्रय लेता है तो श्रीदुर्गासप्तशती के पाठमात्र से उसके संकट का निवारण हो जाता है क्योंकि इसका प्रभाव सीधा व्याधि के जड़ पर होता है। यदि अर्थ को भली भाँति समझकर पाठ किया जाए तो सहस्त्रगुना फल मिलता है। कथानक के भावार्थ तथा गूढ़ार्थ को समझकर उन पर मनन एवं चिन्तन करें तो उससे भी सहस्त्रगुना लाभप्रद है। वास्तविकता तो अंतर्मुखी (मानसिक) साधना में है, बहिरंग-पूजन आदि तो मन को ध्यान के लिये तैयार करने की भूमिका-मात्र है।

श्री दुर्गासप्तशती आत्मोत्थान का एक ऐसा राजमार्ग है जिसमें भगवत्प्राप्ति के चारों मुख्य मार्ग (कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग और राजयोग) समाये हुए हैं। अहंभाव तथा कर्ताभाव को त्यागकर, कर्मफल में आसक्ति से रहित होकर, पूर्ण संतोष, श्रद्धा, तत्परता, कुशलता तथा लगन से स्वधर्म का पालन करना कर्मयोग कहलाता है। अपने इष्ट से सम्बन्ध का तार सोते-जागते, उठते-बैठते, सदा जुड़ा रहे, यह भक्तिमार्ग का निचोड़ है। जीवात्मा तथा परमात्मा में भेद के भ्रम से मुक्त होकर दोनों के यथार्थ में एक ही होने की वास्तविकता को समझना और सृष्टि के कण-कण को परमात्मा से व्याप्त देखना ज्ञानयोग का सारांश है। राजयोग अंतरंग साधना-प्रधान है। अपनी रुचि के अनुसार आप कोई भी मार्ग अपना लें, श्रीदुर्गासप्तशती से आपको उसके अनुरूप मार्गदर्शन प्राप्त होगा।

इस संदर्भ में भारतीय ऋषियों तथा योगियों ने अपने तप से मानव शरीर के विभिन्न चक्रों पर मन्त्रशक्ति का जो गहरा प्रभाव होता है, उसका अध्ययन किया। साथ ही प्रकृति के विभिन्न स्तरों में जो शक्तियाँ सदैव विराजमान रहती हैं, उन पर भी मंत्र का जो प्रभाव पड़ता है, उस पर अनुसंधान किया। आत्मोत्थान के लिये इनमें से अनुकूल शक्तियों से कैसे सहयोग एवं सहायता

प्राप्त की जाए और प्रतिकूल शक्तियों को कैसे निरस्त किया जाए, इसका गहन अध्ययन हमारे आगम-शास्त्र की मानव-मात्र को अपूर्व देन है।

सप्तशती का हर श्लोक अपने आप में मन्त्र है और शुद्ध उच्चारण सहित इनके क्रमानुसार पाठमात्र से ऐसे कम्पन उत्पन्न होते हैं जिनसे वातावरण शुद्ध हो जाता है। ये कम्पन आत्मोन्नति के लिये अनुकूल शक्तियों को जागृत करते हैं और विरोधी तत्वों को निष्क्रिय कर देते हैं। उच्चारण सहित देवीकवच के पाठ से ऐसे प्रतिकूल तत्व पास ही नहीं फटक सकते। सर्वव्यापी परमेश्वर के प्रत्येक अंश (दिवी-देवता) में अपनी विशेष प्रकार की स्पन्दन-तरंग होती है। यदि शुद्ध मंत्रोच्चारण द्वारा भक्त अपने अंतरंग मन में तथा बाह्य वातावरण में भी उसी प्रकार की स्पन्दन-तरंग उत्पन्न कर ले, तो उस देवी-देवता का प्रकट होना उतना ही अवश्यम्भावी है जितना कि सुर में मिले दो सितारों में से एक का तार छेड़ने पर दूसरे का स्वत: बज उठना। श्रीदुर्गापाठ का संकटमोचन माहात्म्य यही है।

जिनका स्वभाव भावना-प्रधान न भी हो, वे भी माँ के प्रति अपनी भावना से अनभिज्ञ नहीं होंगे। माता के रूप में ईश्वर की कल्पना, प्राणि-मात्र के स्वभाव के अनुकूल होने के कारण भगवत्प्राप्ति का सबसे सरल और सहज साधन है। बच्चा माँ का हाथ पकड़े तो छूट भी सकता है परन्तु यदि अपना हाथ माँ को पकड़ा दे तो फिर गिरने की सम्भावना नहीं रहती। मानवीय माता भी अपने नन्हें बच्चे को अच्छे से अच्छा सबकुछ देती है, तो फिर उस शिशु को क्या कमी जिसकी माता स्वयं ब्रह्माण्ड की स्वामिनी साक्षात महालक्ष्मी हो ? वह शिशु मूर्ख और अज्ञानी कैसे रह सकता है जिसकी माता सर्वज्ञान की स्रोत साक्षात महासरस्वती हो ? काल की कुदृष्टि उस पर कैसे हो सकती है जिसकी माता स्वयं महाकाल की हृदयेश्वरी श्रीमहाकाली हो ? बस अबोध शिशु की भाँति माँ पर श्रद्धापूर्ण समर्पण भाव चाहिये। शिशु की रुदन-पुकार सुनकर तत्काल माँ उसके पास आ जायेगी। हाँ, कुमार्ग पर जाने या दुराग्रह करने पर माँ से विषमतारूपी ताड़ना भी मिलेगी परन्तु यदि उसे माता की औषधि समझकर ग्रहण करले और सुधर जाए तो साधक के लिए भुक्ति-मुक्ति दोनों का मार्ग खुल जाता है। इसीलिए तो माँ का नमन उनके हर एक स्वरूप में किया गया है। ***या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण, बुद्धिरूपेण, चितिरूपेण*** तथा ***लक्ष्मीरूपेण संस्थिता*** के साथ-साथ ***क्षुधारूपेण, तृष्णारूपेण, निद्रारूपेण संस्थिता***-महाशक्ति को भी ***नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमो नम:*** कहकर बारम्बार नमन किया गया है।

श्री दुर्गासप्तशती की कथा मानवसमाज में पाए जाने वाले दो प्रकार के साधकों पर केंद्रित है, जिसके प्रतीक राजा सुरथ और वैश्यवर समाधि हैं। तंत्र-शास्त्र के अनुसार, पूर्वसंस्कारों तथा वर्तमान प्रवृत्तियों के आधार

पर मानवजाति के साधकों को तीन वर्गों (तमोगुण-प्रधान -'*पशु*'; रजोगुण-प्रधान -'*वीर*'; और सतोगुण-प्रधान - '*देव*') में विभाजित किया गया है। (इन वर्गों को 'दानव', 'मानव' तथा 'देव' की संज्ञा भी दी जाती है।) दैत्यगण तपस्या तथा बल में कम नहीं, पर तमोगुण के वश में होकर पशुवत अहंकारी अत्याचारी व्यवहार के कारण इन्होंने सर्वशक्तिमान के प्रति भी 'वैर-भाव' अपनाया अत: उनका विनाश हुआ। राजा सुरथ सबल सशक्त राजसिक प्रवृत्ति के हैं और वीर-वर्ग के साधकों के प्रतीक हैं। दूसरे साधक, वैश्यवर समाधि, सात्विक प्रवृत्ति के देव-वर्ग के प्रतीक हैं। इन्होंने धर्म-कर्म (सात्विकता) से अर्थोपार्जन कर प्रतिष्ठा आदि प्राप्त की। परन्तु कालान्तर में ये दोनों विषम परिस्थितियों से ऐसे घिरे कि अपना-अपना घर छोड़ने पर बाध्य हुए। सुरथ और समाधि जहाँ मिले वह आश्रम मेधा (निश्चयात्मक बुद्धि/शक्ति) ऋषि का निकला। अभिप्राय यह है कि अच्छे मनुष्य पर भी संकट आ ही जाते हैं चाहे वह पूर्वजन्म के कर्मों का प्रभाव हो या फिर और ऊँचे आध्यात्मिक स्तर पर उठाने के लिए कठिन परीक्षा। किन्तु साधक श्रद्धावान हो तो मेधा का आश्रय मिल ही जाता है और ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखने लगता है और यदि उस पर चल पड़े तो फिर इष्ट के वरदान से संकट दूर होते हैं और इच्छानुसार भोग या मोक्ष या दोनों की प्राप्ति अवश्य होती है।

श्रीदुर्गासप्तशती के माध्यम से उस महाशक्ति के विषय में समझाया गया है जो विश्व के सृजन, पालन तथा संहार का कारण है और जिससे सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। सुरथ और समाधि की जिज्ञासा पूर्ति के माध्यम से ऋषिवर मेधा ने श्रीमहाशक्ति की कथा का वर्णन तीन चरित्रों के रूप में तेरह अध्यायों में किया।

प्रथम चरित्र

पहले अध्याय में सृष्टि के आरम्भ की कथा है जब प्रलय के बाद एक ओर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हुआ और दूसरी ओर साथ ही उनके प्रतिरूप मधु और कैटभ दानव भी उत्पन्न हुए। इस चरण की अधिष्ठात्री देवी श्रीमहाकाली हैं। कथा का आरम्भ सुरथ और समाधि पर आई विपदाओं से किया गया है। ऋषि मेधा के आश्रम में दो ऐसे व्यक्ति आ मिले जो चरित्रवान और समृद्ध भी थे और जिन्होंने जीवन में सफलता भी प्राप्त की परन्तु उन पर ऐसी विपदा आई कि उन्होंने ग्लानिवश घर छोड़ने का निश्चय कर लिया। परन्तु यह बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी कि जिनके व्यवहार के कारण घर छोड़ा, उन्ही के कुशल-क्षेम की चिन्ता उन्हें यहाँ भी क्यों सताए जा रही है। ऋषि मेधा ने समझाया कि प्रवृत्तिमार्ग में ऐसा ही होता है। भगवती महामाया के प्रभाव से सभी प्राणी ममता के भंवर

में फंसे मोह की गहराइयों में भटकते रहते हैं। ज्ञानीजनों तक का चित्त भी मानो बलात खिंचकर इसी में डूब जाता है। ये भगवती महामाया जगदीश्वरी की योगनिद्रारूपा हैं। यही चराचर जगत की सृष्टि करती हैं और बंधन तथा मोक्ष दोनों प्रदान करने वाली हैं। यहाँ तक कि विश्व के पालनकर्ता भगवान विष्णु भी इनके प्रभाव से कल्पान्तर में योगनिद्रा के अधीन पूर्णतया निश्क्रिय हो जाते हैं और उन्हें पुन: चेतना तभी आती है जब भगवती महामाया की कृपा होती है। सुरथ और समाधि की उत्सुकता जागी और उन्होंने श्रीमहामाया के विषय में और जानना चाहा। तब ऋषि ने उन्हें पूरा कथानक सुनाना आरम्भ किया।

कल्प के अन्त (अर्थात प्रलय) से विश्व के पालनकर्ता भगवान विष्णु अनन्त (शेषनाग) की शैय्या पर निद्रा देवी के अधीन सुखमय शान्ति की नींद में पूर्णतया निष्क्रिय अवस्था में सो रहे थे। किन्तु विधि के विधान के अनुसार अगले कल्प के लिए सृष्टि का पुनर्निर्माण तो होना ही है, और यह कार्य सृष्टिकर्ता ब्रह्मा द्वारा किया जाना है। समय आने पर, दैवी आदेश से, सृष्टि के निर्माण का विचार एक स्पन्दन के रूप में अंकुरित हुआ और इसके साथ ही भगवान विष्णु के नाभिकमल से (जिसे योगी मणिपुर चक्र कहते हैं जो शरीर के कार्यकलाप के नियन्त्रण का मुख्य केन्द्र है) श्रीब्रह्मा का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु जैसे रात के बिना दिन का अस्तित्व नहीं, अंधेरे के बिना उजाले का नहीं, उसी प्रकार सृष्टिकर्ता के जन्म के साथ ही विरोधी शक्तियाँ भी भगवान विष्णु के कर्णमल से मधु और कैटभ दानवों के रूप में स्वत: उत्पन्न हुईं। ध्वंसात्मक शक्तियाँ प्रारम्भ में रचनात्मक शक्तियों से डटकर मुकाबला करती हैं विशेषकर इसलिये क्योंकि रचनात्मक शक्ति तो निर्माणकार्य में सक्षम होती है, विनाश का विरोध करने का उसे न तो समय होता है और न ही क्षमता। ब्रह्मा जी भी अप्रतिभ होकर विचार करने लगे कि अब मैं क्या करूँ। ऐसी विषम परिस्थितियों में सदाचारी व्यक्तियों को ईश्वरीय सहायता सदैव उपलब्ध होती है। ब्रह्माजी को आकाशवाणी से आदेश मिला कि तप करो। तप में उन्होंने देखा कि विष्णु भगवान को निद्रादेवी के प्रभाव से मुक्त करने का केवल एक ही रास्ता है और वह है कि श्रीमहामाया की स्तुति की जाय। तदनुसार उन्होंने बड़ी सुन्दर स्तुति की जो (श्लोक ७२ से ८७) रात्रिसूक्त के नाम से प्रख्यात हुई। यह श्रीमहामाया के तमोगुणी रूप निद्रादेवी की स्तुति है और इसके बाद श्री महामाया ने प्रसन्न होकर श्री विष्णुको निद्रादेवी के प्रभाव से मुक्त किया। जागने पर श्रीविष्णु को स्थिति समझ में आ गई और मधु-कैटभ से युद्ध कर उन्होंने ब्रह्माजी को दैत्यों के प्रकोप से बचाया। जब बहुत काल तक युद्ध बराबरी का ही चलता रहा तब उन्हे दानवों को पराजित करने के लिये भगवती महामाया की कृपा की आवश्यकता का आभास हुआ।

उनकी प्रेरणा से मधु और कैटभ ने अहंकार के वशीभूत होकर श्रीविष्णु से कहा कि हम तुम्हारी वीरता से प्रसन्न हैं और तुम हमसे वरदान माँगो। श्रीविष्णु ने अवसर का लाभ उठाकर अपने हाथों उनके हनन का वर माँगा और उसी वरदान के प्रभाव से मधु और कैटभ मारे गये। सृष्टि के आरम्भ के इस चरण की अधिष्ठात्री देवी हैं श्री महाकाली, जो श्रीमहादेवी के तमोगुण की प्रतीक हैं।

इस कथानक से यह शिक्षा मिलती है कि प्रकृति के नियमानुसार कोई भी अच्छा काम आरम्भ करते समय उसका विरोध करने वाली शक्तियों का जन्म भी अवश्य होता है और उनसे निपटने के लिये कभी कभी बुद्धि, कार्यकुशलता, चतुराई, लगन, कर्मठता मात्र पर्याप्त नहीं होते। इनसे पार पाने के लिए यदि ईश्वरीय सहायता ली जाए तभी कार्य में सफलता प्राप्त हो पाती है।

मध्यम चरित्र

द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अध्याय में सृष्टि के विकास के द्वितीय चरण की गाथा है और रजोगुणस्वरूपा श्रीमहालक्ष्मी देवी इसकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इनकी कृपा से मनुष्य को ऐश्वर्य की प्राप्ति तो हुई, परन्तु उसके साथ-साथ विलासिता(काम), क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर(ईर्ष्या) आदि विकार भी आ गए। देवगण तथा देवराज इन्द्र भी इन दुष्कामनाओं के वशीभूत हो पतन के मार्ग पर अनायास ही चल पड़े। परिणामस्वरूप दानवराज महिषासुर से लम्बे युद्ध के बाद पराजित होकर इन्द्र अपनी गद्दी खो बैठे और देवताओं को स्वर्ग से भागकर हिमालय के वनों और कन्दराओं में शरण लेनी पड़ी। घोर कष्ट से पीड़ित होकर अब उनका अहंकार नष्ट हुआ और व्याकुल होकर सभी देवता एकत्रित हुए और प्रजापति ब्रह्मा को आगे कर भगवान शंकर और विष्णु के शरणागत हुए। दानवों के अत्याचार की गाथा सुनाकर देवताओं ने उनके विनाश के उपाय पर विचार करने की प्रार्थना की। देवताओं की करुण कहानी सुनकर क्रुद्ध हुए हरि-हर के मुख से महत् तेज प्रकट हुआ। दैवी प्रेरणा से सभी देवताओं ने भी अपनी-अपनी व्यक्तिगत शक्ति इस संगठित शक्ति में अर्पित कर दी और इस तेजोमय महान शक्तिपुञ्ज ने सिंहवाहिनी भवानी माँ दुर्गा का रूप लिया। इनमें प्रत्येक देवता की शक्ति निहित थी और उन सबके शस्त्रास्त्र भी इनके पास थे। (वामन पुराण के अनुसार यह सब ऋषि कात्यायन के आश्रम में हुआ और उन्होंने भी अपने तेज के द्वारा देवताओं के तेज को परिपुष्ट किया। इसीसे भगवती का एक नाम **कात्यायनी** भी हुआ।) माँ दुर्गा के अट्टहास करने पर समस्त लोक कम्पायमान हुए और चकित होकर महिषासुर आश्चर्य प्रकट करता हुआ भागकर आया। उसके साथ बल के मद से अन्धी विशाल दैत्य सेना थी और

उनके जो सेनानायक थे उनके नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि ये किस भाव के प्रतीक हैं। सेनानायक चिक्षुर, चामर (चँवर डोलाने वाला अर्थात चाटुकार), उदग्र (उन्नत शिखर अर्थात महत्वाकांक्षी), महाहनु (हनु: शब्द का अर्थ होता है, जीवन पर आघात करने वाली वस्तु), असिलोमा (जिसके रोम तलवार की भाँति तीखे हों), बाष्कल (जो सदा आँसू बहा कर दूसरों को ठगता हो), परिवारित (लिप्त), बिडाल (बिलाव जैसी आँखों वाला) आदि सभी असुर सेनानायक अपनी चतुरंगिणी सेनाओं के साथ असंख्य सैनिकों, रथों, घोड़ों और हाथियों को लेकर श्रीमहादेवी से युद्ध करने लगे। भगवती ने खेल ही खेल में उनके अस्त्र काट दिये और उनके वाहन सिंह ने भी दैत्य सेना में आतंक मचा दिया। श्रीअम्बिका के निश्वासों से हज़ारों गण उत्पन्न हुए जो दैत्य सेना का दलन करने लगे। खून की नदियाँ बह निकलीं और पहली बार दैत्यों को अपना अहंकार चूर्ण होता दिखा। जगदम्बा और उनके वाहन सिंह ने असुरों की विशाल सेना को शीघ्र ही नष्ट कर दिया।

तृतीय अध्याय में ऋषि ने आगे का इतिहास बताया कि सेनानायक चिक्षुर को देवी ने अपने बाणों से निरस्त्र कर दिया तो उसने शूल से प्रहार किया परन्तु देवी के शूलप्रहार से उसके भी सैकड़ों टुकड़े हो गये और चिक्षुर प्राण से हाथ धो बैठा। फिर सेनानायक चामर ने शक्ति का प्रहार किया किन्तु जगदम्बा ने अपनी 'हुं'कार शक्ति से उसे आहत कर नीचे गिरा दिया। देवी का सिंह उछलकर चामर के हाथी पर चढ़ गया और वहाँ भी युद्ध हुआ। सिंह वेग से आकाश की ओर उछला और नीचे आते समय पञ्जों की मार से चामर का सिर धड़ से अलग कर दिया। उदग्र भी देवी के हाथों मारा गया और कराल भी धराशायी हुआ। इसी प्रकार उद्धत, बाष्कल, ताम्र, अन्धक, उग्रास्य, उग्रवीर, महाहनु, बिडाल, दुर्धर और दुर्मुख, ये सभी अपनी जान से हाथ धो बैठे। अपनी सेना का संहार होता देखकर महिषासुर ने अब भैंसे का रूप धारण कर देवी के गणों को धराशायी किया और तत्पश्चात सिंह को मारने के लिए गजराज के रूप में झपटा। देवी ने तलवार से उसकी सूंड़ काट डाली। फिर से अपने भैंसे के रूप में आकर वह अपने सींगों से पर्वतखण्डों को देवी के ऊपर फेंकने लगा। महादेवी ने इनको भी अपने बाणों से चूर्ण किया और गरजते हुए महिषासुर को अन्तिम चेतावनी दी जब तक मैं मधुपान करती हूँ तब तक क्षणभर के लिए तू खूब गर्ज ले फिर तो तेरी मृत्यु होनी ही है और तब देवता हर्ष से गर्जन करेंगे। यह कहकर महादेवी सिंह के साथ उछल कर महादैत्य के ऊपर चढ़ गईं और शूल से उसके कंठ पर आघात किया। उसी क्षण वह भैंसे का रूप त्यागकर मनुष्य रूप में आधा ही आ पाया था कि वह देवी के हाथों मारा गया। दैत्यों की सारी सेना भाग गई और सम्पूर्ण देवता अत्यन्त प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे।

दूसरे और तीसरे अध्यायों से वैयक्तिक स्तर पर यह शिक्षा मिलती है कि तप के प्रभाव से या पूर्वजन्म के संचित पुण्य से चाहे स्वर्ग ही क्यों न मिल जाए, परन्तु यदि सतत सदाचार के अभ्यास में ज़रा भी चूक हुई तो विलासिता, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकार आ ही जाते हैं। फिर ईश्वरीय शक्ति से रहित होकर पतन और पराजय निश्चय है (जैसा हाल देवेन्द्र का हुआ)। प्रत्येक दैत्य वास्तव में अपनी ही किसी न किसी कुवृत्ति का प्रतीक है और दैत्यबल की विजय का अर्थ है कि हम कुवृत्तियों के शिकार हुए और इन कुवृत्तियों ने देवताओं (सद्‌वृत्तियों) को हमारे जीवन से निष्कासित कर दिया। अच्छे संस्कार वाले और आस्तिक लोग विषम परिस्थितियों में पड़कर ईश्वर की ओर अग्रसर होते हैं और भौतिकतावादी नास्तिक लोग मद से अन्धे होकर व्यभिचार, अत्याचार और हिंसा की ओर।

सामाजिक स्तर पर इससे शिक्षा मिलती है कि जब तक अच्छे लोग अन्याय के विरुद्ध संगठित नहीं होंगे तब तक दुष्टों का ही बोलबाला रहेगा। संगठन का अर्थ है अपने व्यक्तिगत मत, बल आदि को संगठन की सेवा में अर्पित कर देना ताकि पूरा संगठन एकमत हो दुष्टों का विनाश कर सके। अलग-अलग रहकर निजी अभिमान या स्वार्थवश दुष्टों का सामना किया तो सफलता नहीं मिलेगी। मानव इतिहास इस सिद्धान्त की सत्यता का साक्षी है। संगठन की शक्ति यदि सत्कार्य हेतु हो तो दैवी सहायता अवश्य मिलती है और दुष्टों की पराजय अवश्यम्भावी है।

महिषासुर तथा दैत्य सेना के देवी के हाथों मारे जाने पर इन्द्र आदि सभी देवता नतमस्तक होकर भगवती दुर्गा की पूर्ण भावना के साथ अत्यन्त सुन्दर शब्दों में स्तुति करने लगे।

चतुर्थ अध्याय में इन्द्रादि देवताओं की इस प्रार्थना (शक्रादिस्तुति) में जिन शब्दों तथा उपमाओं का प्रयोग किया उनसे श्रीमाँ के विषय में बड़ा सारगर्भित ज्ञान मिलता है। देवताओं ने श्रीमाँ को सम्पूर्ण देवताओं की शक्ति का समूह वर्णित करते हुए कहा कि इन्होंने ही अपनी शक्ति से सम्पूर्ण जगत को व्याप्त कर रखा है। पुण्यात्माओं के घर में लक्ष्मीरूप में, पापियों के यहाँ दरिद्रता के रूप में, शुद्ध अन्तःकरण वालों में बुद्धिरूप में, सत्पुरुषों में श्रद्धारूप में तथा कुलीन पुरुषों में लज्जारूप में वे ही निवास करती हैं। सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति में ये कारणस्वरूपा हैं और तीनों गुण (सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण) होते हुए भी ये गुणदोष से मुक्त हैं। जिससे समस्त शास्त्रों के सार का ज्ञान होता है वह मेधाशक्ति भी यही देवी हैं। इस दुर्गम भवसागर से पार उतारने वाली दुर्गादेवी भी आप ही हैं। देव और दानव दोनों आपके पुत्र समान हैं जिन्हें आप निज-संस्कार के अनुरूप फल प्रदान करती हैं। हृदय में कृपा और युद्ध में निष्ठुरता यह दोनों बातें केवल आप ही में हैं।

जिन दैत्यों ने आपके साथ युद्ध किया उन्हें भी आपने युद्धभूमि में वध तो किया पर उन्हें साथ मुक्ति भी प्रदान की। राक्षसों को मारने से संसार को सुख मिले इसीलिए आपने उन्हें युद्ध में ललकार कर युद्धभूमि में उन्हें स्वर्गलोक पहुँचाया। स्तुति के अंत में देवताओं ने श्रीमाँ का आह्वान किया कि हर दिशा में, अपने हर शस्त्रास्त्र से, अपने हर गणों द्वारा और हर प्रकार से हमारी (देवताओं की) तथा संसार के सभी प्राणियों की रक्षा करने की कृपा करें।

पूर्ण श्रद्धा तथा भावना से की गई इतनी सुन्दर स्तुति से प्रसन्न होकर श्रीदुर्गा देवी ने वर मांगने को कहा। देवताओं ने निवेदन किया कि शत्रु महिषासुर को मारकर आपने हमारी इच्छा तो पहले ही पूर्ण कर दी और अब माँगने को कुछ भी शेष नहीं रहा किन्तु इसके उपरान्त भी यदि आप वर देने हेतु कृपावान हैं तो हमें यह वर दीजिए कि आप हम पर सदा प्रसन्न रहें तथा (१) *जब जब हम आपका स्मरण करें तब तब आप दर्शन देकर हमारे संकट दूर करने की कृपा करें; एवं (२) जो मनुष्य इन स्तोत्रों के द्वारा आपकी स्तुति करे उसे आप धन, वैभव, पारिवारिक सुख आदि से भी सम्पन्न करने की कृपा करें।*

श्रीमाँ ने तथास्तु कहकर केवल देवताओं को ही नहीं अपितु मानवमात्र को भी सदा के लिए एक अपूर्व वरदान दे दिया। जब भी कोई संकट हो या (बिना संकट के भी) जब मनुष्य इन स्तोत्रों का मन-वचन-कर्म से पाठ करेगा तो श्रीमाँ भगवती उसकी सहायता एवं सुख-समृद्धि बढ़ाने के लिए वचनबद्ध हैं। और यही कारण है कि श्रीदुर्गासप्तशती संकट निवारण तथा सुख-समृद्धि में वृद्धि प्राप्त करने का सरल एवं अमोघ साधन है।

उत्तर चरित्र

पाँचवें से तेरहवें अध्याय में सृष्टि के विकास के तीसरे चरण के घटनाक्रम का वृत्तांत है। अब केवल शारीरिक सुख और धन-सम्पत्ति से मनुष्य को संतुष्टि नहीं होती। अब वह इनसे परे मानस के सूक्ष्मतर स्तर - सौन्दर्य, कला, विद्या और अध्यात्म के क्षेत्र में अग्रसर होना चाहता है, क्योंकि उसे इन्हीमें सुख की अनुभूति होती है। श्रीमहासरस्वती इस चरित्र की अधिष्ठात्री देवी हैं जिनके स्वरूप से ही उनके गुण स्वयं-स्पष्ट हो जाते हैं।

अध्यात्म के इस स्तर पर इन गुणों के प्रतिरूप जो विकार हैं वे भी सूक्ष्म होने के कारण ऐसे चुपचाप प्रवेश कर जाते हैं कि पता भी नहीं चलता, और एक बार आने के बाद ऐसा भ्रमजाल बिछा देते हैं कि छुटकारा बड़ी कठिनाई से मिलता है। इनके प्रतीक जो दानव हैं वे भी तदनुसार बड़े शक्तिशाली हैं और उन पर विजय पाना उत्तरोत्तर कठिन होता जाता है क्योंकि ये मानो मुक्तिमार्ग पर मोर्चा बाँधकर बैठे अंतिम विरोधी सैनानी हैं। इन्हें पराजित करने के बाद ब्रह्मज्ञान के मार्ग में और कोई ऐसी विषम बाधा नहीं मिलती

- फिर तो सतत अभ्यास द्वारा अग्रसर होते रहना है और इस बात का विशेष ध्यान रखना होता है कि कहीं कोई विकार रूपी दानव चुपके से घुसकर हमारी दिशा न बदल दे या आगे बढ़ने में रुकावट न पैदा कर दे।

इस स्तर के विकारों के प्रतीक हैं दैत्यराज शुम्भ और उनके भाई निशुम्भ और उनके मुख्य सेनानायक हैं धूम्रलोचन, चण्ड, उसका सहयोगी मुण्ड, तथा रक्तबीज। उत्तर चरित्र में देवी के हाथों एक-एक करके इनके हनन की कथा है।

पाँचवें अध्याय में इतिहास की पुनरावृत्ति हुई और शुम्भ-निशुम्भ ने देवताओं को अपमानित, पराजित, अधिकारहीन तथा राज्यभ्रष्ट कर स्वर्ग से निकाल दिया। संकट में पड़ने पर देवताओं को महिषासुरमर्दिनी रूप में जगदम्बा का वह वरदान याद आया कि आपत्तिकाल में स्मरण करने पर वे उनके संकट का निवारण करेंगी। यह विचार आते ही वे गिरिराज हिमालय पर गये और वहाँ भगवती विष्णुमाया की स्तुति करने लगे। यह सुन्दर स्तुति (पाँचवें अध्याय के श्लोक ९ से ८२ तक) **देवीसूक्त** के नाम से प्रसिद्ध है और अत्यन्त कल्याणकारिनी एवं फलप्रदायिनी है। इस स्तुति में जीवन की हर अनुभूति, हर गुण, हर स्थिति और हर पहलू में मातेश्वरी के दर्शनकर बारंबार उनका नमन किया गया है। बुद्धि, शक्ति, क्षान्ति (क्षमा), लज्जा, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, स्मृति, दया, तुष्टि, शान्ति और मातृ-रूप के साथ साथ दूसरा रूप - निद्रा, क्षुधा, छाया, तृष्णा, जाति, वृत्ति, भ्रान्ति रूप भी श्रीमाँ का ही है जो सर्वव्यापी तथा चैतन्य-स्वरूपा हैं। इन सभी स्वरूपों को तीन-तीन बार नमस्कार (*नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै*) किया गया है अर्थात उनके राजसी, सात्विकी एवं तामसी (सृजन, पालन तथा संहारकारी) तीनों रूपों को नमस्कार है, और चौथा *नमो नमः* उनके तुरीय रूप का बारम्बार नमन है।

जब देवता स्तुति कर रहे तभी माँ पार्वती वहाँ पर गंगा में स्नान करने आईं और उन्होंने देवताओं से पूछा कि आप क्या कर रहे हैं। उसी क्षण उन्हीं के शरीरकोष से प्रकट होकर शिवा देवीने इसका कारण बताया, मानो उनके अंतरयामी पक्ष ने स्वयं ही देवताओं के कष्ट का आभास पाकर उन्हें दिये हुए वरदान की याद दिलाई हो। श्रीमाँ के शरीर कोष से प्रकट होने के कारण उनका यह रूप ***कौशिकी*** के नाम से विख्यात हुआ और फलस्वरूप माँ पार्वती का शरीर काले रंग का हो गया और वे हिमालय की ***कालिका देवी*** के नाम से विख्यात हुईं।

दैत्यराज शुम्भ-निशुम्भ देवताओं पर विजय पाने के बाद यह समझ बैठे थे कि संसार में जो भी सर्वोत्तम वस्तु है उसका उपभोग करने के अधिकारी केवल वे ही हैं और यदि ऐसी वस्तु किसी दूसरे के पास हो तो

उसे बलपूर्वक छीन लो। चण्ड-मुण्ड द्वारा अम्बिकादेवी के अति सुन्दर रूप की प्रशंसा सुनकर शुम्भ और निशुम्भ ने अपने दूत दैत्य सुग्रीव को भेजा कि देवी को हमारे बल-वैभव से प्रभावित एवं प्रसन्न कर यहाँ ले आओ। दूत से शुम्भ-निशुम्भ का प्रणय-निमंत्रण सुनकर भगवती दुर्गादेवी ने एक सारगर्भी उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि मैंने पहले से प्रतिज्ञा कर रखी है कि *मेरा भर्ता वही होगा जो - (क) मुझे संग्राम में जीत लेगा; (ख) मेरे अभिमान को चूर्ण कर देगा; तथा (ग) संसार में मेरे समान बलवान होगा।* दूत ने उन्हें घमण्डी कहा और यह धमकी देकर चला गया कि सीधे से चली चलो नहीं तो जब तुम्हें केश पकड़कर घसीटते हुए ले जाएंगे तब अपनी प्रतिष्ठा खोकर जाना पड़ेगा। देवी ने उत्तर दिया कि दैत्यराज से आदर-पूर्वक मेरा संदेश दे देना तदोपरान्त वे जो भी उचित समझे, उसे करें। दूत ने वापस जाकर यह संदेश कह सुनाया।

देवी की प्रतिज्ञा के इन तीन बिन्दुओं का बड़ा महत्वपूर्ण गूढ़ अर्थ है। संग्राम में जय का भावार्थ है कि महामाया से व्याप्त इस संसार के द्वन्द्वों (सुख-दुःख, शीत-उष्ण, ऊँच-नीच, प्रेम-घृणा आदि) एवं त्रिगुणात्मक प्रकृति पर कर्मयोग के द्वारा विजय पाकर ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करना। दूसरी प्रतिज्ञा, अभिमान-चूर्ण, का भावार्थ है - जिसने श्रीमाँ के वास्तविक स्वरूप को ढक रखा है और संसार को भ्रमित कर रखा है, ऐसे उनके मायारूपी मुखौटे का भक्तियोग के द्वारा भेदन करना। इस भेदन के बाद भक्त तत्काल ब्रह्मज्ञान का अधिकारी हो जाता है। तृतीय प्रतिज्ञा, समान बल, का गूढ़ार्थ है कि ज्ञानयोग द्वारा इस तथ्य को जान लेना कि आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है, और जब दोनों एक ही हैं तो फिर बल में असमानता कहाँ ? जो कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग आदि द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर ले उसने शिवत्व प्राप्त कर लिया और वही शक्ति से एकात्म प्राप्त करने का अधिकारी है।

परन्तु दैत्यराज इस संदेश का गूढ़ार्थ समझने में असमर्थ रहे। उनकी दैत्यबुद्धि ने इसका अर्थ निकाला कि देवी घमण्ड से भरी है और उसे बल से जीत कर पाया जा सकता है।

छठे अध्याय में ऋषि ने कथानक में आगे यह बताया कि दूत की बात सुनकर शुम्भ-निशुम्भ क्रोध से जल उठे और सेनानायक धूम्रलोचन को आज्ञा दी कि तुम अपनी सेना लेकर जाओ और उस दुष्टा के केश पकड़ कर घसीटते हुए उसे बलपूर्वक ले आओ। यदि कोई उसकी सहायता के लिए आये तो उसे मार डालो। आज्ञानुसार धूम्रलोचन सेना लेकर पहुँचा और देवी को चेतावनी दी कि सीधे से चली चलो वरना मैं बलपूर्वक केश पकड़कर घसीटते हुए ले जाऊँगा। देवी अविचलित रहीं और बोलीं कि तुम स्वयं बलवान हो और तुम्हारे पास विशाल सेना भी है ऐसी दशा में यदि तुम मुझे बलपूर्वक

ले जाओ तो भला मैं क्या कर सकती हूँ। यह उत्तर सुनकर धूम्रलोचन उनकी ओर दौड़ पड़ा। अम्बिका ने *'हुं'कार* मंत्र के उच्चारण मात्र से उसे भस्म कर दिया। तत्पश्चात दैत्यों की विशाल सेना का देवी ने तथा उनके वाहन सिंह ने संहार कर दिया।

धूम्रलोचन के नाम से ही स्पष्ट है कि यह दैत्य उस अधपके ज्ञान का प्रतीक है जिसके प्रभाव से मनुष्य को सत्य-सदाचार का मार्ग स्पष्ट नहीं दिखता, ठीक उसी तरह जैसे धुएं के प्रभाव से जब आँखों से पानी निकल रहा हो तो सब कुछ धुंधला ही दिखता है। ऐसी अवस्था में उपयुक्त मंत्रजाप के अभ्यास से अज्ञान की धुंधलाहट दूर हो जाती है। ऐसे अज्ञान के साथ जुड़ी दुर्वृत्तियाँ भी धर्म द्वारा निर्धारित आचरण का सतत पालन करते रहने से दूर हो जाती हैं। देवी का वाहन सिंह ***धर्म*** का प्रतीक है। उनके द्वारा भी दैत्य सेना के संहार किये जाने का गूढ़ार्थ है कि मंत्रजाप के अभ्यास द्वारा मन के एकाग्र होने पर अज्ञान का धुँधलापन दूर होने पर, धर्म के अनुसार आचरण से सत्य का मार्ग स्पष्ट दिखने लगता है। अम्बिका के *'हुं'कार* से धूम्रलोचन के भस्म होने तथा तत्पश्चात दैत्यों की विशाल सेना का श्रीमाँ तथा उनके वाहन सिंह द्वारा संहार के कथानक का यही भावार्थ है।

धूम्रलोचन-वध का समाचार सुनकर भी शुम्भ-निशुम्भ को कुछ समझ में नहीं आया और उसने चण्ड और मुण्ड महादैत्यों को आज्ञा दी कि वे सैन्य बल सहित जाकर अम्बिका को बलपूर्वक ले आएँ और यदि इस कार्य की सफलता में कुछ भी संदेह हो तो उसे मारकर भी ले आएँ।

सप्तम अध्याय में चण्ड-मुण्ड अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर अपनी चतुरंगिनी सेना के साथ चल पड़े। उन्होंने देखा कि हिमालय के स्वर्णशिखर पर सिंहवाहिनी देवी मंद-मंद मुस्करा रही थीं। दैत्य सेना ने अपने हथियार संभाल लिये और देवी को पकड़ने के प्रयत्न में उनके पास जाकर उन्हे घेर लिया। अम्बिका उन्हें देखकर क्रुद्ध हुईं और उनसे एक विकरालमुखी कँकाल-रूपिणी काली देवी प्रकट हुईं जो तलवार और पाश लिये, चीते के चर्म की साड़ी पहने, नर-मुंडों की माला से विभूषित थीं और देखने में अत्यंत भयानक थीं। उनकी भयंकर गर्जना से चारों दिशाएँ गूँज उठीं और दैत्यों के मन में भय उत्पन्न हुआ। बड़े वेग से वे दैत्य सेना पर टूट पड़ीं और उनका भक्षण करने लगीं। अपनी सेना के पैर उखड़ते देखकर महादैत्य चण्ड और मुण्ड स्वयं भी उनके ऊपर अस्त्र शस्त्र लेकर दौड़ पड़े। देवी ने एक बहुत बड़ी तलवार हाथ में लेकर **'हं'** मंत्र का उच्चारण किया और चण्ड पर टूट पड़ीं। उसके केश पकड़कर कालिकादेवी ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। चण्ड को मृत देख कर मुण्ड देवी को मारने दौड़ा। देवी ने उसे भी तलवार से घायल कर मौत के घाट उतार दिया। महापराक्रमी चण्ड

और मुण्ड को मृत देखकर उनकी सेना चारों दिशाओं में तितर-बितर होकर डर के मारे भाग गई।

तब कालिकादेवी चण्ड और मुण्ड का मस्तक हाथ में लेकर भगवती चण्डी के पास पहुँचीं और प्रचण्ड अट्टहास करते हुए कहा कि ये दो महापशु, चण्ड और मुण्ड, मैंने आपको भेंट किये, अब इस युद्धरूपी यज्ञ में शुम्भ और निशुम्भ की बलि आप स्वयं दीजिए। महादेवी ने मधुर वाणी में कहा कि चण्ड और मुण्ड को आप मेरे पास लायीं हैं इसलिए आप जगत में **चामुण्डा** के नाम से विख्यात होंगी।

विश्वसत्ता स्वरूपा भगवती महामाया में विराट-रचना और विराट-विध्वंस दोनों ही शक्तियाँ निहित हैं। अत्यंत भयावह रूप वाली देवी चामुण्डा वही हैं जो प्रलयकाल में जगत के सारे पदार्थों का भक्षण कर जाती हैं। इस प्रकार वे भगवती की विराट विध्वंसकारी शक्ति का प्रतीक हैं। इनकी आराधना से भक्तों में उनके शारीरिक स्तर के प्राचण्ड्य का तथा मानसिक स्तर पर भ्रमित कर भटकाने वाले तर्क आदि विचार-विकारों का नाश होता है।

जैसा नाम से ही स्पष्ट है, दैत्य चण्ड मनुष्य की उन प्रचण्ड शारीरिक वासनाओं का प्रतीक है जो मूलाधार चक्र में केंद्रित रहती हैं और जिन पर सतत नियंत्रण न रखा गया तो वे सर्वनाश का कारण बन जाती हैं। गुण्डे की दादागिरी, हत्यारे की हिंसक प्रवृत्ति, बलात्कारी की हिंसक कामुकता, ये सब दैत्यराज चण्ड की देन है। इनके सहयोगी मुण्ड भी इतने ही भयंकर हैं। जैसा सबको विदित है कि मनुष्य के सिर को भी मुण्ड कहते हैं। दैत्यराज मुण्ड भी मनुष्य के सिर में स्थित मस्तिष्क में निरंतर उठने वाली विचार तरंगो पर आधिपत्य कर उन्हे तर्कवादी, निरर्थक, परहितविरोधी, परनिन्दावादी, भौतिकतावादी और ईश्वर-विरोधी मोड़ देकर मनुष्य को विनाश के मार्ग पर चलने पर विवश कर देते हैं। इनके संहार के लिये श्रीमाँ को अपना विध्वंसकारी रूप दर्शाना पड़ता है। यही है चण्ड-मुण्ड वध के कथानक का भावार्थ।

अष्ठम अध्याय में शुम्भ ने चण्ड और मुण्ड के मारे जाने पर क्रुद्ध होकर दैत्यों की सम्पूर्ण सेना को युद्ध में कूच करने की आज्ञा दी। उदायुध दल के छियासी सेनानायक, कम्बु दल के चौरासी, कोटिवीर्य के पचास और धौम्र कुल के सौ नायक अपनी अपनी सेना के साथ युद्ध में भेजे गये। कालक, दौर्हृद, मौर्य और कालिकेय असुरों को भी यही आदेश मिले। यह भयंकर असुर सेना देवियों के समक्ष आ पहुँची। श्रीचण्डिकामाँ की धनुष की टंकार, सिंह की दहाड़, तथा घण्टे की ध्वनि से चारों दिशायें गूँज उठीं। विशाल दानव-सैन्य द्वारा देवियों को घिरा देखकर देवताओं को पुनः अपनी उस संगठन-शक्ति का स्मरण हुआ जिसके द्वारा गत युग में महिषासुर पर

विजय संभव हो सकी थी। इस अनुभव से प्रेरित होकर सभी देवताओं की शक्तियाँ उनके शरीरों से निकलकर चण्डिका देवी के साथ युद्ध करने हेतु रणभूमि में आ पहुँचीं। ब्रह्माजी की शक्ति ब्रह्माणी हंसयुक्त विमान पर बैठकर, माहेश्वरी वृषभ पर आरूढ़ होकर तथा कार्तिकेय की शक्ति अपने वाहन मयूर पर सवार होकर आईं। इसी प्रकार सभी देवताओं की शक्तियाँ अपने अपने विशिष्ट शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर अपने अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर युद्धभूमि में आ पहुँचीं। भगवान महादेव ने उचित समय देखकर श्रीमाँ चण्डिका से इन असुरों का संहार करने को कहा। तत्काल देवी के शरीर से एक अत्यन्त भयानक और परम उग्र चण्डिका शक्ति प्रकट हुई और उन्होंने दैत्यों को एक अन्तिम अवसर देने हेतु महादेवजी से कहा कि आप शुम्भ निशुम्भ के पास दूत बनकर जाइये और उनको यह संदेश दीजिए कि यदि वे जीवित रहना चाहते हों तो पाताल को लौट जाऐं और यदि अभिमानवश युद्ध ही करना चाहते हों तो उन्हें दैवी शक्तियों का ग्रास बनना पड़ेगा। श्री महादेव को दूत के रूप में भेजने के कारण ये महादेवी **शिवदूती** के नाम से विख्यात हुईं। महादेवी का संदेश भगवान शिव के मुख से सुनकर शुम्भ क्रोध से भर गया और उसके सैन्यबल ने देवियों पर अपने अस्त्र-शस्त्रों से आक्रमण आरम्भ कर दिया। घमासान युद्ध छिड़ गया और देवियों ने असुर सेनानायकों और उनके सैन्यबल को परास्त कर युद्ध से भागने पर विवश कर दिया।

उन्हें भागते देखकर असुर सेनानायक **रक्तबीज** अपनी गदा से माता ऐन्द्री (इन्द्र की शक्ति) के साथ युद्ध करने लगा। ऐन्द्री के प्रहार से उसके शरीर से जो रक्त बहा उसकी एक-एक बून्द से एक-एक नया रक्तबीज उत्पन्न होने लगा और ऐसे सहस्त्रों रक्तबीज पैदा होकर देवियों से युद्ध करने लगे। इतने सारे नये नये असुरों के प्रकट होने के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण जगत को असुरों से व्याप्त देखकर देवताओं को बड़ा भय हुआ। देवताओं को भयभीत देखकर चण्डिका देवी ने कालीमाँ से कहा कि हे चामुण्डे अपना मुख और भी फैला लो और मेरे शस्त्रपात से गिरने वाले रक्तबीज के सभी रक्तबिन्दुओं को अपने मुख में समा लो और उनसे उत्पन्न होने वाले दैत्यों का भी तत्काल भक्षण कर डालो। कालीमाता ने ऐसा ही किया और सभी रक्तबिन्दुओं तथा उनसे उत्पन्न होने वाले दैत्यों का भक्षण करते हुए युद्धभूमि में विचरती रहीं। थोड़े ही समय में रक्त द्वारा उत्पन्न सभी दैत्य समाप्त हो गये और रक्तहीन हुआ महादैत्य रक्तबीज पृथ्वी पर गिर अपने प्राण खो बैठा।

विचार का विषय यह है कि यह रक्तबीज किस दुर्वृत्ति का प्रतीक है, कि जिसके रक्त के बिन्दु के धरती पर पड़ते ही नये रक्तबीज का जन्म हो जाता था जिसके विनाश के लिये देवी को एक विशेष विधि का उपयोग करना पड़ा।

मनुष्य के मन में अविरल विचारश्रृंखला का चलते रहना सृष्टि के

इस मानस-प्रधान चरण की एक प्रमुख विशेषता है। एक विचार समाप्त होते होते दूसरा आ जाता है और इससे पहले कि वह समाप्त हो, तीसरा मन को घेर लेता है। असन्तुष्ट तथा अशान्त मन में ऐसी विचारश्रृंखला प्राय: अनन्त होती है। यदि यह स्वार्थ-जनित सांसारिक विषयों पर केन्द्रित रही तो मनुष्य मोह ममता के भंवर में जीवन पर्यन्त डूबता-उतराता रहता है। यदि विचार धन-लोभ से सम्बन्धित हुए तो वे मनुष्य को सही-गलत किसी भी प्रकार पैसा बनाने पर बाध्य कर देते हैं। फिर धन की प्राप्ति होने पर भी संतुष्टि नहीं होती, और अधिक पाने की लालसा बनी रहती है। वह भी मिल जाए तो उससे भी और अधिक का लालच आ पकड़ता है। ऐसा ही काम, क्रोध, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, आदि से सम्बन्धित विषयों पर विचार करने से होता है। लक्ष्य प्राप्ति के उपरान्त भी संतुष्टि नहीं मिलती बल्कि और अधिक पाने की चाह में मन और अशान्त होता जाता है, जैसे अग्नि में घी की आहुति देने से लपटें और तेज़ व ऊँची होती जाती हैं। मन को विचार-तरंगों से बलपूर्वक मुक्त करना अत्यंत कठिन होता है। किन्तु यदि विचार श्रृंखला को ईश्वर की ओर मोड़ दिया जाए तो यही प्रवृत्ति मनुष्य को दैवत्व की ओर ले जाने का साधन बन जाती है।

इस अध्याय से मानवजाति को शिक्षा मिलती है कि अविरल विचार-श्रृंखला की मानसिक प्रवृत्ति को बलपूर्वक दबाने के स्थान पर सांसारिक विषयों के विचारों को ईश्वर की ओर मोड़ दो। रक्तबीज के रक्त की हर बूँद (अर्थात मन में आने वाले हर विचार) को कालिका देवी के विस्तृत मुख में ही डालो (अर्थात ईश्वर के अनन्त पहलुओं में से किसी से भी अपने विचारों को जोड़ दो)। बस धीरे-धीरे मन ईश्वर की ओर केन्द्रित होता जायेगा और सांसारिक विषय स्वत: ही छूट जायेंगे, अर्थात दानव रक्तबीज शक्तिहीन हो धराशायी होकर दम तोड़ देगा।

नवम अध्याय में इस अद्भुत चरित्र को सुनकर सुरथ और समाधि की जिज्ञासा की पूर्ति करते हुए, ऋषि मेधा ने नवें अध्याय में आगे बताया कि अपने सारे सेनानायकों और सैन्यबल का विनाश देखकर निशुम्भ क्रोध में भरकर अपनी निजी असुर-सेना को साथ ले स्वयं देवी को मारने के लिए युद्धभूमि में आ पहुँचा। पीछे पीछे शुम्भ भी अपनी सेना के साथ आ गया। देवी के साथ शुम्भ और निशुम्भ का संग्राम छिड़ गया। घमासान युद्ध हुआ और दैत्यराज निशुम्भने अपनी तीखी तलवार और चमकती अष्टचंद्र जटित ढाल से देवी के वाहन (धर्म के प्रतीक) महासिंह पर प्रहार किया। श्रीमाँ ने क्षुरप्र नामक बाण से उसकी ढाल तलवार के टुकड़े टुकड़े कर दिये। उसके अन्य अस्त्र-शस्त्र भी देवी ने नष्ट कर दिया। तब वह फरसा हाथ में लेकर देवी के ऊपर टूट पड़ा। देवी ने बाणों की बौछार से उसे

घायल कर धरती पर गिरा दिया। अपने भाई को घायल देखकर महादैत्य शुम्भ भी देवी के ऊपर टूट पड़ा। उसने अपनी मायावी शक्तियों का प्रयोग किया और धरती से ऊपर आकाश में भी घमासान युद्ध होने लगा। बाणों की बौछार होने लगी और क्रोध में आकर चण्डिका ने शूल प्रहार कर शुम्भ को मूर्छित कर पृथ्वी पर गिरा दिया। इस बीच निशुम्भ को चेतना आई और उसने बाणों द्वारा देवी, काली तथा सिंह को घायल कर दिया। दुर्गतिनाशिनी दुर्गा ने कुपित होकर उसके अस्त्रों को काट दिया और फिर शूल से उसकी छाती छेद डाली जिससे वह प्राण खो बैठा। इस बीच देवियों से युद्ध करते हुए बहुत से असुर मारे गए और बाकी रणभूमि छोड़कर भाग गए।

दसवें अध्याय में अपने महावीर भाई निशुम्भ के मरने पर और सेना के संहार होने पर शुम्भ के हनन का वृत्तान्त है। अपनी मूर्छा से जागकर शुम्भ ने कुपित होकर ताना कसा कि इतनी स्त्रियों का सहारा लेकर युद्ध करके तुम क्या अभिमान जता रही हो। तब देवी ने सारगर्भित उत्तर दिया कि '**एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा, पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः**' (मैं तो अकेली ही हूँ, इस संसार में मेरे सिवा दूसरा भला है कौन? ये सब मेरी ही विभूतियाँ हैं जो वापस मुझमें ही प्रवेश कर रही हैं।) और क्षणभर में सारी विभूतियाँ अम्बिका देवी के शरीर में लीन हो गईं। अब अकेली अम्बिका देवी का शुम्भ और उसकी सेना के साथ घमासान युद्ध हुआ। यह युद्ध धरती पर और आकाश में भी हुआ जिससे सिद्ध पुरुषों और मुनियों को भी बड़ा विस्मय हुआ। बहुत देर तक आकाश में युद्ध के बाद देवी ने शुम्भ को घुमाकर पृथ्वी पर पटक दिया। फिर भी वह चण्डिका का वध करने के लिए उनकी ओर वेग से दौड़ा और तब देवी ने त्रिशूल से उसकी छाती भेदकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया जहाँ उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

दैत्य सैन्यबल के साथ शुम्भ-निशुम्भ के मारे जाने पर वातावरण पुनः शुद्ध हो गया तथा प्रकृति भी अनुकूल हो गई। देवताओं को अपने अधिकार पुनः प्राप्त हुए और सर्वत्र प्रसन्नता छा गई। आकाश भी स्वच्छ दिखाई देने लगा, प्राकृतिक आपदायें शान्त हो गईं और सभी कुछ प्रकृति के नियमानुसार चलने लगा। देवताओं का हृदय भी महादेवी के प्रति आभार से गद्‌गद् हो गया।

ग्यारहवें अध्याय में कृतज्ञ देवगण ने अग्नि को साक्षी कर माँ कात्यायनी के रूप में भगवती जगदम्बा की जो स्तुति की उसका वर्णन है। स्मरण होगा कि श्री महिषासुरमर्दिनी का प्रादुर्भाव ऋषि कात्यायन के आश्रम में हुआ था, इसीलिये इस बार उन्होंने उनके श्रीकात्यायनी रूप में ही माता की स्तुति की। इस अत्यन्त सुन्दर स्तुति में श्रीमाँ को 'नारायणी' (नार = जीवसमूह;

अयनी = आश्रयरूपिणी) के नाम से बारम्बार सम्बोधित किया गया है जिसे 'नारायणी स्तुति' भी कहते हैं।

नारायणी स्तुति के विभिन्न श्लोकों में अनेक अत्यंत शिक्षाप्रद सत्य कहे गए हैं। उदाहरणार्थ, छठें श्लोक को ही ले लीजिये जिसमें दो बड़े महत्वपूर्ण एवं सामयिक सत्य हैं। श्लोक है - **'विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु'**। इसमें पहला सत्य है कि समस्त विद्याएँ तुम्हारे ही विभिन्न स्वरूप हैं अर्थात भगवती सर्वशास्त्रमयी हैं। विश्व के सम्पूर्ण ज्ञान की स्रोत श्रीमाँ ही हैं। इस सत्य की तो सम्पूर्ण मातृ-परिवार को निजी जानकारी है। परमहंस श्री रामकृष्ण की भाँति हमारे पूजनीय बाबाजी भी श्रीमाँ के निरंतर सानिध्य के परिणामस्वरूप जिस विषय पर चिन्तन करते थे उसे ही वे विशेषज्ञों से भी अच्छी तरह समझ जाया करते थे। तेईसवें श्लोक में भी श्रीमाँ को **'महाविद्या'** की संज्ञा भी दी गई है। जिस विद्या के द्वारा महत् अर्थात ब्रह्म की प्राप्ति होती है, उसे ही महाविद्या कहते हैं। दूसरी बात जो इस श्लोक के उत्तरार्ध में कही गई है वह है कि संसार की सभी स्त्रियाँ तुम्हारे ही स्वरूप हैं। दूसरे शब्दों में स्त्रियों का अपमान स्वयं देवी का अपमान है। कितनी सामयिक है इस सत्य की घोषणा।

अपने विभिन्न रूपों में भक्तों की रक्षा करनेवाली देवी की स्तुति करते हुए, देवताओं ने श्रीमाँ से प्रार्थना की कि वे सदा हमें शत्रुओं के भय से बचाती रहें और सम्पूर्ण जगत के पाप नष्ट कर उनके परिणामस्वरूप होनेवाली महामारी आदि बड़े उपद्रवों को दूर करें। प्रसन्न होकर देवी ने वर माँगने को कहा। देवताओं ने वर माँगा कि आप इसी प्रकार तीनो लोकों की समस्त बाधाओं को शान्त करो और हमारे शत्रुओं का नाश करती रहो।

श्रीमाँ ने ये वरदान देते हुए (४०वें से लेकर ५४वें श्लोकों में) अपने भविष्य के सात अवतारों का उल्लेख किया। ये हैं - १. **नन्दा** - नन्दगोप के घर यशोदा के गर्भ से जन्म, श्री महालक्ष्मी की अंशभूता; २. **रक्तदन्तिका** - श्री महाकाली की अंशभूता जिनके द्वारा दानव वैप्रचित्त का हनन हुआ और जिन्हें *रक्तचन्डिका* भी कहते हैं; ३. **शताक्षी** - *दुर्गमासुर* ने ब्रह्माजी से वेदों पर पूर्ण अधिकार तथा देवताओं पर विजय का वरदान पाकर वेदों को लुप्त कर दिया और देवताओं को पराजित कर भगा दिया था। यज्ञादि के बन्द हो जाने से वर्षा भी बन्द हो गई और प्राणी मरणासन्न होने लगे। तब ब्राह्मणों ने हिमालय में जाकर भगवती की स्तुति की। प्रसन्न होकर वे शताक्षी के रूप में प्रकट हुईं और उनके असंख्य नेत्रों से नौ दिनों तक बराबर वृष्टि हुई; ४. **शाकम्भरी** - उपरोक्त परिस्थिति में जब तक नई फ़सल नहीं आई तब तक भूख से निवारण हेतु माता ने अपने करकमलों से स्वादिष्ट फल, मूल, शाक प्रदान किये। इस रूप में देवी ने मनुष्यों के लिये रसपूर्ण

खाद्य और पशुओं के लिये तृणादि प्रदान कर आपत्तिकाल में उनका भरण-पोषण कर उनके प्राणों की रक्षा की; ५. **दुर्गा** - एक कथानक के अनुसार, देवी शताक्षी की लीला का समाचार सुन दुर्गमासुर उनसे युद्ध करने आ पहुँचा। ग्यारहवें दिन असुर का वध हुआ और देवी दुर्गा के नाम से प्रसिद्ध हुईं। स्कन्दपुराण के अनुसार यह युद्ध विंध्याचल में हुआ था और देवी विंध्यवासिनी दुर्गा कहलाईं; ६. **भीमा** - भीमरूप धारण कर मुनियों की रक्षा हेतु राक्षसों का भक्षण करने वाली, ये काली अंश सम्भूता हैं; ७. **भ्रामरी** - कठोर तप के बाद अरुण दैत्य ब्रह्माजी से अमरत्व तो नहीं पा सका परन्तु उसे यह वर मिल गया कि युद्ध में अस्त्र-शस्त्र द्वारा, पुरुष या स्त्री से, द्विपद, या चतुष्पद प्राणी से उसकी मृत्यु नहीं होगी। उससे पराजित एवं त्रासित देवगण ने भगवती की प्रार्थना भुवनेश्वरी के रूप में की, तब वे भ्रामरी रूप में प्रकट हुईं। उनकी प्रेरणा से उनके कर में स्थित असंख्य भ्रमरों ने दैत्यराज अरुण व उसकी सेना को नष्ट कर दिया।

बारहवें अध्याय में देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर श्री माँ ने सर्वकल्याण हेतु बताया कि जो भी प्रतिदिन एकाग्र चित्त होकर इन तीनों चरित्रों का पाठ करेगा उसे कोई पाप नहीं छू सकेगा (अतैव उस पर पापजनित आपत्तियाँ भी नहीं आएंगी) और किसी प्रकार के दु:ख एवं भय से वह पीड़ित नहीं होगा। अष्टमी, चतुर्दशी एवं नवमी को भी एकाग्रचित्त होकर इस पाठ के श्रवण से भी यही फल मिलेगा। जिस मन्दिर में प्रतिदिन विधिपूर्वक देवी महात्म्य का पाठ किया जाता है वहाँ माँ सदा ही वास करती है। बलि-पूजा-होम-महोत्सवों के अवसर पर यदि चण्डी पाठ भी किया जाए तो विधि-विधान में किसी रही सही कमी का प्रतिकूल असर नहीं होता।

यहाँ पर यह बात भली भाँति समझने की है कि बलि का वास्तविक तात्पर्य क्या है ? यह है पूजन में अपने इष्ट को अपना सर्वस्व अर्पण कर देना। मनुष्य यह तो कर नहीं पाता और इष्ट की प्रिय वस्तु या अपनी सर्वाधिक प्रिय वस्तु को प्रतिनिधि के रूप से बलि चढ़ाकर इष्ट को प्रसन्न करने का प्रयास करता है। परन्तु लोग अपनी रुचि, स्वभाव व समझ के अनुसार बलिदान करने लगे। वैसे निवृत्तिमूलक पूजन में फल, मूल, गन्ध, पुष्पादि उपहार या बलि के रूप में दिये जाते हैं। प्रवृत्तिमूलक पूजन में पशु आदि की बलि होने लगी। वैसे पशुरूपी अपनी दुर्वृत्तियों की बलि देना सर्वोत्तम बलि मानी जाती है। किन्तु यह सब तो बलि का स्थूल रूप है, असली बलि तो मानसिक होती है। मानसिक भावना के बिना बलि, पूजन आदि बाहरी दिखावा मात्र रह जाते हैं; और यदि तीव्र भावना हो तो स्थूल स्तर पर बाह्य बलि, पूजन आदि की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

तेरहवें अध्याय में राजा सुरथ तथा वैश्यवर समाधि की साधना का वर्णन है। मेधा ऋषि द्वारा श्रीमाँ के उत्तम माहात्म्य को दोनों ने पूर्ण एकाग्रता से सुना था। इससे प्रेरित होकर स्वयं श्रीमाँ के बताए हुए मार्ग पर ये दोनों तत्काल चल पड़े। नदीतट पर जाकर दोनों ने तपस्या आरम्भ कर दी। देवीदर्शन हेतु पहले अल्पाहार और फिर निराहार रहकर, वे देवीसूक्त का जप करने लगे। लिखा है कि वे दोनों अपने रक्त से प्रोक्षित बलि देते हुए लगातार तीन वर्ष तक आराधना करते रहे। रक्त जीवन का स्रोत होता है और रक्त-प्रोक्षित बलि का तात्पर्य एवं भावार्थ यह है कि उन्होंने मानसिक रूप से अपने प्राणों की बलि अपने इष्ट को अर्पण कर दी। भला ऐसी सम्पूर्ण तन-मन से की गई आराधना से कौन सी माँ प्रसन्न नहीं होगी? श्रीमाँ ने उन्हे प्रत्यक्ष दर्शन देकर वर माँगने को कहा। रजोगुण-प्रधान 'वीर' साधक **सुरथ** ने इस जन्म में शत्रु का नाश और अपने राज्य को पुन: पाने का तथा अगले जन्म में नष्ट न होने वाला राज्य (अर्थात भुक्ति और मुक्ति दोनों का वरदान) माँगा और सतोगुण-प्रधान 'देव' श्रेणी के साधक **समाधि** ने ममता और अहंतारूप आसक्ति का नाश करने वाला ज्ञान (अर्थात मुक्ति का वरदान) माँगा। श्रीमाँ ने सहर्ष उन दोनों को उनके मनोवांछित वर प्रदान किये।

यह था अति-संक्षेप में श्रीदुर्गासप्तशती की कथा तथा उसका भावार्थ। श्री दुर्गासप्तशती में निहित भावार्थ वेदान्त तथा आगम के उन सनातन सिद्धान्तों पर आधारित है जिनकी जानकारी पाश्चात्य विज्ञान को पिछले चन्द दशकों से ही होनी आरम्भ हुई है और इसके किसी भी दृष्टान्त को विज्ञान अभी तक नकार नहीं पाया है। जो बिना समझे और परीक्षण किये कुछ भी ग्रहण करने को तैयार नहीं, ऐसी आजकी शिक्षित युवा पीढ़ी के लिये भी श्रीदुर्गासप्तशती सबसे उपयुक्त धर्म-ग्रंथ है।

अल्पकाल में सहज ढंग से, स्वाभाविक रुचि के अनुकूल, भुक्ति और मुक्ति, भोग और योग, दोनों की प्राप्ति श्रीदुर्गासप्तशती में बताये गये मार्ग के अनुसरण से अवश्यम्भावी है। आवश्यकता है केवल श्रद्धापूर्वक नियमानुसार प्रयास की।

आइये, अब श्रीदुर्गासप्तशती का मूल रूप में तथा उसके हिन्दी में किये गए भाव काव्यान्तर के पठन का आनन्द लीजिये।

प्रकाशन प्रकोष्ठ

।। श्रीदुर्गादेव्यै नमः ।।

विषय सूची

क्र०	विषय	पृष्ठ	क्र०	विषय	पृष्ठ
१.	भगवती स्तुति एवं देवीमयी	१	१९.	ग्यारहवाँ अध्याय	१७२
२.	सप्तश्लोकी दुर्गा	२	२०.	बारहवाँ अध्याय	१८८
३.	श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र	६	२१.	तेरहवाँ अध्याय	१९७
४.	देवी कवच	१२	२२.	ऋग्वेदोक्त देवीसूक्त	२०४
५.	अर्गला स्तोत्र	२४	२३.	तन्त्रोक्त देवीसूक्त	२०८
६.	कीलक	३०	२४.	श्रीदेव्यथर्व शीर्ष	२१८
७.	वेदोक्त रात्रिसूक्त	३४	२५.	प्राधानिक रहस्य	२३०
८.	तन्त्रोक्त रात्रिसूक्त	३६	२६.	वैकृतिक रहस्य	२३६
९.	पहला अध्याय	४२	२७.	मूर्ति रहस्य	२४६
१०.	दूसरा अध्याय	६८	२८.	क्षमा प्रार्थना	२५२
११.	तीसरा अध्याय	८४	२९.	श्रीदुर्गामानस-पूजा	२५४
१२.	चौथा अध्याय	९४	३०.	श्रीदुर्गा बत्तीस नाममाला	२६२
१३.	पाँचवाँ अध्याय	१०६	३१.	देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र	२६४
१४.	छठा अध्याय	१२६	३२.	सिद्धकुञ्जिकास्तोत्र	२७०
१५.	सातवाँ अध्याय	१३२	३३.	ललिता सहस्रनामावली	२७२
१६.	आठवाँ अध्याय	१४०	३४.	श्री मातृ-मन्दिर आरती	३१२
१७.	नवाँ अध्याय	१५४	३५.	कीर्तन	३१४
१८.	दशवाँ अध्याय	१६४			

भगवतीस्तुतिः

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां
सद्रत्नवन्मकरकुण्डलहारभूषाम् ।
दिव्यायुधोर्जितसुनीलसहस्रहस्तां
रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम् ॥

प्रातर्नमामि महिषासुरचण्डमुण्ड-
शुम्भासुरप्रमुखदैत्यविनाशदक्षाम् ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहनशीललीलां
चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम् ॥

प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं
धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम् ।
संसारबन्धनविमोचनहेतुभूतां
मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णोः ॥

देवीमयी

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके !
सकलशब्दमयी किल ते तनुः ।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो
मनसिजासु बहिःप्रसरासु च ॥

इति विचिन्त्य शिवे ! शमिताशिवे !
जगति जातमयत्नवशादिदम् ।
स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता
न खलु काचन कालकलास्ति मे ॥

– महामाहेश्वर आचार्यअभिनवगुप्त विरचित

भगवती स्तुति

प्रातः सुमिरता हूँ तुम्हें, हे शरद-चन्द्र-प्रभा-वती !
युग-कर्ण रत्निल मकर कुण्डल, हार तुम गल धारती ।।
निज सहस हस्त सुनील में, आयुध विविध अनुपम धरी।
अरुणाभ उत्पल ज्यों, चरण हैं आपके, परमेश्वरी !!

प्रातः नमन है, माँ ! तुम्हें, हे महिष दैत्य सँहारिणी !
शुम्भादि दानव-कुल प्रमुख, पुनि चण्ड मुण्ड विदारिणी ।।
अज रुद्र मुनिगण इन्द्र, मोहन हेतु, हे लीलावती !
चण्डी सकल सुर-मूर्ति हो, तुम रूप नाना साजती ।।

भजता तुम्हें हूँ प्रात, माँ ! अभिलाष तुम हो पूरती।
कुल चर-अचर तुम धारती, जग ताप-त्रय को चूरती ।।
भव-बन्ध-भञ्जन हेतु हो, माँ भगवती ! तुम सर्वदा।
माया परा परब्रह्म की, हिय में धरूँ तुमको सदा ।।

देवीमयी

वाणी-जगत में शब्द ऐसा, कौन सा है, अम्बिके !
हे वाग्मिते ! जिसमें तुम्हारी, स्तुति न हो, जगदम्बिके !!
जो दृश्य-जग-आकृति-विविध, औ सर्व मानस-भाव हैं।
तुमसे रहित कुछ भी न दिखता, तव सकल उद्भाव हैं ।।

तब, हे अमंगल-ध्वंसकारिणि! जग-सुमंगल-पथ-पगे !
बिन यत्न ही, देवी! मुझे, सब चर-अचर में यों लगे ।।
मम काल का पल एक भी, संसार में बीते जहाँ।
तेरे स्तवन जप अर्चना, औ ध्यान से वञ्चित कहाँ !!

श्री भगवती स्तुति एवं देवीमयी का पद्यानुवाद

सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच--
देवि त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनी।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः ॥

देव्युवाच--
शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम्।
मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते ॥

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥१॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥२॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥३॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥४॥

सप्तश्लोकी दुर्गा

वृषकेतु बोले-देवि! भक्तों को सुलभ तुम हो सदा।
तुम सर्व-कार्य-विधायिनी, जग चर-अचर की सर्वदा॥
निज कार्य-सिद्धि निमित्त नर को, कर्म जो भी साध्य हो।
कलिकाल की उस कर्म-विधि को, यत्नसह, सुमुखे ! कहो॥

हे देव ! बोली देवि, कलि में इष्ट साधन इक यही।
तव प्रीति, जग-कल्याण हित, मैं अम्बिका-स्तुति कह रही॥

ॐ जग मोह-माया-वश करे, नित महामाया भगवती।
ज्ञानी जनों का ज्ञान भी, बलवत हरे वह बलवती॥ १॥

हे देवि दुर्गे! स्मरण से, भव-भय सकल तुम टारती।
जो स्वस्थ मन भजते, उन्हें देती तुम्हीं हो शुभ-मती॥
दारिद्र्य-दुःख निवारिणी! हे जीव-जग संकट हरी।
है कौन जग-उपकार को, तुम सम विकल, करुणा करी॥ २॥

हे सर्व मंगल-मंगला! तुम सब मनोरथ दायिनी।
हे त्र्यम्बके!. तुमको नमन, गौरी शिवे नारायणी॥ ३॥

तुम दीन औ शरणागतों के, दुख हरन को दृढ़-मती।
जग-जीव-पीड़ा हारिणी, तुमको नमन, हे सतमती॥ ४॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥५॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
ददासि कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥६॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥७॥

इति श्रीसप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा॥

तुम सर्व शक्ति स्वरूपिणी, सर्वस्व हो सर्वेश्वरी।
भय से उबारो, माँ! हमें, तव नमन, हे दुर्गेश्वरी॥५॥

तुम तुष्ट हो कर, हे दयामयि! सर्व रोग निवारती।
आभीष्ट देती हो सकल, निज आश्रयी-भय टारती॥
जो हैं शरण, माँ! आपकी, हैं मुक्त भव-सन्ताप से।
वे अन्य का बनते सहारा, आप के सु-प्रताप से॥६॥

त्रय लोक की अखिलेश्वरी! तुम सकल भव-बाधा हरो।
रिपु-भय हमारा नष्ट कर, पूरण मनोरथ सब करो॥७॥

इस प्रकार सप्तश्लोकी दुर्गा का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।

।। श्रीदुर्गायै नमः ।।

श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने।
यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती।।१।।

ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी।
आर्या दुर्गा जया चाद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी।।

पिनाकधारिणी चित्रा चण्डघण्टा महातपाः।
मनो बुद्धिरहंकारा चित्तरूपा चिता चितिः।।

सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी।
अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याभव्या सदागतिः।।

शाम्भवी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा।
सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी।।

अपर्णानेकवर्णा च पाटला पाटलावती।
पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी।।

अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी सुरसुन्दरी।
वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता।।

ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः।।

श्रीदुर्गा अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र

अष्टोत्तरी शतनाम दुर्गा के सुनो, हे पार्वती!
शुभकाल अवसर जानि, यों बोले वचन शंकर यती।।
इसका पठन-पाठन-श्रवण, हिय में धरे जो सर्वदा।
दुर्गा भवानी भगवती, उस पर प्रसन्न रहे सदा।।१।।

श्री ॐ साधुमती सती, दुर्गा जया भव-मोचनी।
भव-प्रीतिका पीनाक-धारिणि, शाम्भवी त्रय-लोचनी।।

आद्या भवानी चन्द्रघण्टा, सदानन्द-स्वरूपिणी।
सत्ता अनन्ता अहंकारा, चेतना चित-रूपिणी।।

चिन्ता चिता चित्रा अभव्या, भव्य-रूपा भासिनी।
मन बुद्धि आर्या दक्ष-कन्या, दक्ष-यज्ञ विनाशिनी।।

वाराहि कलमञ्जीर-रञ्जनि, ऐन्द्रिकी माहेश्वरी।
भाविनी सर्वासुर-विनाशा, सुन्दरी सुर-सुन्दरी।।

कौमारि लक्ष्मी बुद्धिदात्री, पुरुष-आकृति निर्मला।
बहुला बहुल-प्रेमा अपर्णा, पाटलावति पाटला।।

भाव्या सदागति सर्व-विद्या, सर्व शास्त्रमयी क्रिया।
सुरमातु-ज्ञाना विविध-वर्णा, वैष्णवी रत्न-प्रिया।।

सत्या सु-नित्या शूल धारिणि, सर्ववाहन-वाहना।
कैशोरि शुम्भ-निशुम्भ-हननी, क्रूर-दृग रुद्रानना।।

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च बुद्धिदा।
बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना।।

निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी।
मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी।।

सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी।
सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा।।

अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्य धारिणी।
कुमारी चैककन्या च कैशोरी युवती यतिः।।

अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला।।

अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी।।
शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी।
कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी।। २-१५।।

य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम्।
नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति।। १६।।

धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च।
चतुर्वर्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतीम्।। १७।।

कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम्।
पूजयेत् परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टकम्।। १८।।

बलदायिनी प्रौढा अप्रौढा वृद्ध-मातु जलोदरी।
यति कालरात्री घोर-रूपा, भद्रकालि महोदरी।।

शिवदूति सावित्री कराली, सर्व दानव-घातिनी।
अति अनल ज्वाला अन्त-रहिता, चण्ड-मुण्ड निपातिनी।।

मातंग मुनि-पूज्या तपस्विनि, प्रत्यक्षा कात्यायनी।
उन्मुक्त-केशि महा-तपा, परमेश्वरी नारायणी।।

मधु कैटभासुर-प्राण हन्त्री, महिष दैत्य विदारिणी।
मन्त्रादि सर्व स्वरूपिणी, आयुध विविध कर धारिणी।।

चामुण्डिका आरण्य-दुर्गा, पट्ट-अम्बर-अंगिनी।
उत्कर्षिका आमेय-विक्रमि, अति-बला मातंगिनी।।

सर्वास्त्र धारिणि विष्णुमाया, विविध शस्त्र सुशोभिनी।
युवती कुमारी एक कन्या, ब्राह्मी ब्रह्म-वादिनी।। २-१५।।

श्रद्धा सहित यह स्तोत्र नित, जो जन पढ़े भूलोक में।
उसको न, देवि! असाध्य कुछ भी, कर्म तीनों लोक में।। १६।।

धन-धान्य हय गज सुत सुभार्या, धर्म पाता है सभी।
मिलती अनन्तर अन्त में, उसको सनातन मोक्ष भी।। १७।।

पूजन कुमारी करि प्रथम, ध्यावे सदा देवेश्वरी।
सह-परा-भक्ति सुपूजि देवी, पढ़ै शत अष्टोत्तरी।। १८।।

तस्य सिद्धिर्भवेद् देवि सर्वैः सुरवरैरपि।
राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात् ।। १९ ।।

गोरोचनालक्तककुङ्कुमेन
सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण ।
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो
भवेत् सदा धारयते पुरारिः ।।२०।।

भौमावास्यानिशामग्रे चन्द्रे शतभिषां गते।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् सम्पदां पदम् ।। २१ ।।

इति श्री विश्वसारतन्त्रे दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

इस भाँति वह सुर श्रेष्ठ-गण से, सिद्धि पाता है सभी।
नृप दास उस के हो रहें, धन राज्य लक्ष्मी प्राप्त भी।।१९।।

लाक्षा सिंदूर कपूर कुंकुम, मधु-त्रयी रोचन धरे।
ये द्रव्य योजित पिष्ट कर, एकत्र सब समरस करे।।
लिख यन्त्र विधिवत विज्ञजन, श्रद्धा सहित जो धारता।
वह शिव स्वरूप समान हो, पाता अलौकिक दिव्यता।।२०।।

भौमी अमावस अर्द्ध निशि, जब शतभिषा नक्षत्र हो।
यह स्तोत्र लिख पाठन करे, वैभव पती सर्वत्र हो।।२१।।

इस प्रकार विश्वसारतन्त्र में वर्णित श्री दुर्गाष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।

अथ देव्याः कवचम्

ॐ नमश्चण्डिकायै ।।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ यद्‌गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ।। १ ।।

ब्रह्मोवाच

अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम् ।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ।। २ ।।

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ।। ३ ।।

पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ।। ४ ।।

नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः ।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ।। ५ ।।

अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे ।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्ताः शरणं गताः ।। ६ ।।

न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रणसंकटे ।
नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ।। ७ ।।

देवी कवच

ॐ नमः चण्डिकायै, मुनिवर मार्कण्डेय।
पूछहिं विधि सन मुदित मन, कहहु पितामह श्रेय।।

गुप्त तत्व जो विश्व मँह, करे सुरक्ष सबेउ।
अब लौं कहुँ प्रगट्यो नहीं, सोइ साधन कहि देउ।। १।।

ब्रह्म देव कहने लगे, सुनु ब्रह्मन् चित लाय।
ऐसा साधन इक यही, देवी कवच कहाय।।
जग उपकारक कवच यह, परम गोप्य सुपुनीत।
सोइ सकल वर्णन करौं, मुनिवर सुनहु सप्रीत।। २।।

प्रथम शैल पुत्री सुख धामा। दूसरि ब्रह्मचारिणी नामा।।
तृतिय चन्द्रघण्टा जग राजै। कूष्माण्डा चतुर्थ छवि छाजै।।३।।

स्कन्द मातु पञ्चम शुभ नामा। कात्यायनि षट् रूप सुनामा।।
सप्तम कालरात्रि अभिधाना। अष्टम महागौरि जग जाना।।४।।

नवम सिद्धि दात्री जग माता। नव दुर्गा सब जग कहँ त्राता।।
ये सब नाम सकल श्रुति गाये। सदा ब्रह्म इन्ह निज हिय ध्याये।।५।।

जरत अग्नि बिच जे हिय ध्यावैं। रण मँह शत्रु घिरे मुख गावैं।।
दुर्गम विषम कुसंकट माँहीं। ह्वै भयभीत शरण मँह आहीं।।६।।

सकल अमंगल तुरत नसावै। रण संकट सब दूर भगावै।।
शोक दुख भय आपद नासै। सुभग सुमंगल चहुँ दिशि भासै।।७।।

यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ॥८॥

प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना॥९॥

माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना।
लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया॥१०॥

श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना।
ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता॥११॥

इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः।
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः॥१२॥

दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः।
शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम्॥१३॥

खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम्॥१४॥

दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च।
धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै॥१५॥

नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे।
महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि॥१६॥

त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि।
प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता॥१७॥

भक्ति प्रणत जे निज हिय ध्यावैं। ऋद्धि सिद्धि वाञ्छित फल पावैं।।
सुमिरत जे जन देवि कृपाली। तिन्ह की रक्षा करत कपाली ।।८।।

चामुण्डा शव वाहन साजै। महिष पीठ वाराहि विराजै।।
ऐन्द्री ऐरावत असवारी। शक्ति वैष्णवी गरुड़ सवारी ।।९।।

वृषारूढ़ माहेश्वरि भ्राजै। कौमारी शिखि वाहन साजै।।
लक्ष्मी पद्मासना विराजै। विष्णु प्रिया कर पद्म सुसाजै।।१०।।

वृषभारूढ़ ईश्वरी श्वेता। ब्राह्मि विभूषित हंस उपेता।।
कह ब्रह्मा मन मुदित सुहावैं। अगणित रत्नाभूषित भावैं ।।११।।

योग शक्तिमयि मातु कहावैं। एहिविध देवी सकल पुजावैं।।
नानाभरण विभूषित गाता। नाना रत्न सुशोभित माता।।१२।।

होइ क्रुद्ध जब रथनि विराजैं। करि दर्शन भय विपदा भाजैं।।
शंख चक्र कर गदा विराजैं। मुसलायुध हल शक्ति सुसाजैं।।१३।।

तोमर खेट परशु अरु पाशा। कुन्त त्रिशूल शार्ङ्ग धनु भासा।।१४।।

दैत्य नाश हित आयुध लीन्हे। भक्त अभय करि सब सुख दीन्हे।।
नाना विध आयुध कर धारैं। देवन कहँ सब काज सँवारैं।।१५।।

नमो देवि अति रौद्र स्वरूपे। घोर पराक्रम शक्ति अनूपे।।
अति उत्साह महा बल खानी। भय नाशिनि जय मातु भवानी।।१६।।

त्राहि त्राहि माँ शरण तुम्हारी। काँपत रिपु तव रूप निहारी।।
रक्ष पूर्व दिशि ऐन्द्री माता। अग्नि कोण आग्नेयी त्राता।।१७।।

दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी।
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी।।१८।।

उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा।।१९।।

एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना।
जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः।।२०।।

अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता।।२१।।

मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके।।२२।।

शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी।
कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शाङ्करी।।२३।।

नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका।
अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती।।२४।।

दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका।
घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके।।२५।।

कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला।
ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी।।२६।।

नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी।।२७।।

दक्षिण मोहि रखौ वाराही। नैर्ऋति खड्ग धारिणी माई ।।
पश्चिम दिशि वारुणि रखवारी। मृगवाहिनि वायव्य मँझारी ।।१८।।

उत्तर दिशि राखउ कौमारी। दिशि ऐशान्य शूल कर धारी ।।
ऊपर रक्षउ श्री ब्रह्माणी। नीचे वैष्णवि सब सुख खानी ।।१९।।

इहिंविध दश दिग राखनिहारी। श्री चामुण्डा प्रेत सवारी ।।
रक्षउ जया अग्र मम भागा। विजया रक्षउ पृष्ठ विभागा ।।२०।।

वाम भाग अजिता रखवारी। दक्षिण अपराजिता सम्हारी ।।
उद्योतिनि राखउ शिख मोरी। उमा शीर्ष बसि रक्षउ भोरी ।।२१।।

मालाधरी भाल की त्राता। रक्षो भृकुटि यशस्विनि माता ।।
भृकुटि मध्य रक्षउ त्रय चक्षू। यमघण्टा नासा पथ रक्षू ।।२२।।

नयनन्हि मध्य शंखिनी राजै। द्वार वासिनी श्रोत सुसाजै ।।
काली रक्षउ सदा कपोले। राखउ शंकरि श्रवण अमोले ।।२३।।

देवि सुगन्धा नासा राजै। अपर ओष्ठ चर्चिका विराजै ।।
अमृतकला अधर सरसावै। माँ शारद जिह्वा बसि जावै ।।२४।।

कौमारी दन्तन रखु सारी। कण्ठ देश चण्डी रखवारी ।।
चित्र घण्टिका रखु गल घाटी। तालु रखो माया वैराटी ।।२५।।

चिबुक रक्ष कामाक्षि कृपाली। वाणी सर्व मंगला पाली ।।
रक्षउ भद्रकालि शुभ ग्रीवा। पृष्ठवंश धनुधारिणि पीवा ।।२६।।

नील ग्रीव बहि कण्ठहिं राजै। नल कूबरि गल नलिका साजै ।।
देवि खड्गिनी रखु रखु कन्धे। वज्रधारिणी भुज उन्नन्धे ।।२७।।

हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च।
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी॥२८॥

स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनः शोकविनाशिनी।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी॥२९॥

नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा।
पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी॥३०॥

कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी।
जङ्घे महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी॥३१॥

गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी।
पादाङ्गुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी॥३२॥

नखान् दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी।
रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा॥३३॥

रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती।
अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी॥३४॥

पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसंधिषु॥३५॥

शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा।
अहंकारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी॥३६॥

प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम्।
वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणं कल्याणशोभना॥३७॥

दण्डिनि रक्ष भुजा सब काली। अंगुलि अम्बे परम कृपाली।।
शूलेश्वरी नखन कहँ रक्षी। कुलेश्वरी राखउ मम कुक्षी।।२८।।

महादेवि रक्षउ स्तन देशा। शोक विनाशिनि मनस् विशेषा।।
ललिता करउ हृदय की रक्षा। शूलधारिणी उदर सुरक्षा।।२९।।

नाभि कामिनी राखउ मोरी। गुह्यहिं गुह्येश्वरी किशोरी।।
कामिकि पूतना मेढ्रहिं सारी। रक्षउ गुदहिं महिष असवारी।।३०।।

श्री भगवती राखु कटि मोरी। जानुहिं विन्ध्यवासिनी भोरी।।
जंघा रक्षु सकल सुख दायिनि। महा बला सब काम प्रदायिनि।।३१।।

नारसिंहि रखु गुल्फ हमारी। पाद पृष्ठ तैजसि महतारी।।
पद अंगुलि राखउ श्री माता। तलवासिनि तल रखु जग त्राता।।३२।।

नखनि रक्ष श्री दंष्ट्र कराली। केशनि ऊर्ध्वकेशिनी काली।।
रोम कूप कौबेरी साजै। वागीश्वरि मम त्वचहिं विराजै।।३३।।

अस्थि मांस शोणित वस मज्जा। मेदस रक्षउ गौरी सज्जा।।
कालरात्रि रखु अन्त्र हमारी। श्री मुकुटेश्वरि पित्तहुँ सारी।।३४।।

पद्मकोश पद्मावति वासो। चूड़ामणि मम कफहिं सुवासो।।
ज्वालामुखि नखज्योति सुसाजै। देवि अभेद्या सन्धिन राजै।।३५।।

श्री ब्रह्माणि वीर्य रखवारी। छत्रेश्वरि रखु छाया सारी।।
अहंकार मन बुद्धि हमारी। धर्म-धारिणी राखु सुखारी।।३६।।

पञ्च-वायु राखउ करि दाया। वज्रधारिणी करहु सहाया।।
रखु मम प्राण मातु कल्याणी। मंगल मयि भगवती भवानी।।३७।।

रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा॥३८॥

आयू रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी।
यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च धनं विद्यां च चक्रिणी॥३९॥

गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके।
पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी॥४०॥

पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा।
राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता॥४१॥

रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु।
तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी॥४२॥

पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः।
कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति॥४३॥
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान्॥४४॥

निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः।
त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान्॥४५॥

इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम्।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः॥४६॥

दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः।
जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः॥४७॥

शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा। योगिनि रक्ष रक्ष सुखकन्दा।।
सत रज तम नारायणि माता। राखु कृपा करि जग सुखदाता।।३८।।

वाराही रखु आयु हमारी। धर्म रक्ष वैष्णवि अविकारी।।
कीर्ति सुयश लक्ष्मी धन विद्या। रक्ष चक्रिणी जननी हृद्या।।३९।।

गोत्र राखु मम माँ इन्द्राणी। चण्डी पशु रखु मातु भवानी।।
महालक्ष्मि रखि सुवन सुखारी। भार्या भैरवि रक्ष हमारी।।४०।।

सुपथा पथ मँह करु रखवारी। क्षेमकरी मग रखु निरवारी।।
महालक्ष्मि रक्षउ नृप द्वारे। सब सुख विजया रक्ष हमारे।।४१।।

कवच रहित जे अंग हमारे। प्रति पल रक्ष रक्ष माँ सारे।।
पाप नाशिनी मातु जयन्ती। रक्षा हीन रक्ष गुणवन्ती।।४२।।

जो जन जगत सुमंगल चावै। बिना कवच पद एक न जावै।।
कवच धारि नर जहँ जहँ जाहीं। तहँ तहँ विजय सुमंगल पाहीं।।

जे जे काज हृदय मँह ध्यावै। निश्चय तिनहिं पाइ सुख पावै।।
अतुलित वैभव धन जन शाली। जा पर कृपा करै सुकृपाली।।४३-४४।।

कवच धारि निर्भय बन जावै। विजय विभूति समर मँह पावै।।
अपराजित भू पर कहलावै। मातु कृपा त्रय लोक पुजावै।।४५।।

देव सुदुर्लभ कवच सुहाया। अनुपम फल देवन जस गाया।।
श्रद्धा धरि जे पढहिं त्रिकाला। विजयी बने त्रिलोकी पाला।।४६॥

दैवी सम्पद मिले सुहाई। तीन लोक मँह जय जस छाई।।
साग्र-शतायु होहिं सुखकारी। भय अपमृत्यु रहित अविकारी।।४७।।

नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः ।
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चापि यद्विषम् ।।४८।।

अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।
भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ।।४९।।
सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ।।५०।।

ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ।।५१।।

नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ।
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम् ।।५२।।

यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ।
जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ।।५३।।

यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ।
तावत्तिष्ठति मेदिन्यां संततिः पुत्रपौत्रिकी ।।५४।।

देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ।।५५।।

लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ।।ॐ।।५६।।

।। इति देव्याः कवचं सम्पूर्णम् ।।

सबै व्याधि पल माहिं नसावैं । संक्रामक रुज पास न आवैं ।।
स्थावर जंगम विष नहिं व्यापै । कृत्रिम विष तिहिं देखत काँपै ।।४८।।

सब अभिचार मन्त्र अरु यन्त्रा । भूचर खेचर वारिज तन्त्रा ।।
सहजा कुलजा माला डाकिनि । नभचरघोर महाबलशाकिनि।।४९-५०।।

भूत पिशाच ग्रहन कहँ बाधा । असुर यक्ष गन्धर्व विराधा ।।
ब्रह्म रक्ष कूष्माण्ड बैताला । भैरव भूत पिशाचन्ह माला ।।५१।।

देखत तिन्हहिं तुरन्त नसावैं । कवचहिं जे जन हृदय धरावैं ।।
कवच धरत नर लहँ सनमाना । तेज वृद्धि सुख सम्पति नाना ।।५२।।

तिहिं कर सुयश त्रिलोकी छावै । अनुपम कीर्ति भुवन मँह पावै ।।
कवचहिं पढ़उ प्रथम धरि ध्याना । सप्तशती पुनि पढ़उ सुजाना ।।५३।।

जहँ लगि मही शैल वन राजै । तहँ लगि सन्तति भूमि विराजै ।।५४।।

त्याग पाञ्चभौतिक निज देही । मातु प्रसाद परम पद लेही ।।५५।।

दिव्य रूप धरि सुख सरसावै । शिव सायुज्य मुक्ति पद पावै ।।५६।।

।। ॐ ।।

इस प्रकार देवी कवच का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।

अथार्गलास्तोत्रम्

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ जयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥१॥

जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते॥२॥

मधुकैटभविद्राविविधातृवरदे नमः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥३॥

महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥४॥

रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥५॥

शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥६॥

वन्दिताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥७॥

अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥८॥

अर्गला स्तोत्र

नमो नमो श्री चण्डिका, कुल जगजीव अधीश।
स्तोत्र अर्गला, यों कहें, मार्कण्डेय मुनीश॥

ॐ काली जयन्ती मंगला, जय भद्रकालि कपालिनी।
दुर्गा क्षमा स्वाहा स्वधा, धात्री शिवा जग पालिनी॥१॥

जय नमो चामुण्डे भवानी! प्राण पीड़ा हारिणी।
जय काल-रात्री सर्वगत, जय जय जगत भय टारिणी॥२॥

जय देवि मधु-कैटभ हननि, अज ब्रह्म को वर रञ्जनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी॥३॥

जय जननि! महिषासुर विनाशिनि, भक्त जन सुख कन्दिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी॥४॥

जय रक्तबीज निकन्दिनी, जय चण्ड-मुण्ड विभञ्जनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी॥५॥

जय देवि! शुम्भ-निशुम्भ औ, धूम्राक्ष दैत्य विमर्दिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी॥६॥

हे पद-युगल जग-वन्दिते, सौभाग्य सकल प्रदायिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी॥७॥

आचिन्त्य रूप चरित्रिणी, जय शत्रुदल-बल खण्डिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी॥८॥

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।९।।

स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।१०।।

चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।११।।

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।१२।।

विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।१३।।

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।१४।।

सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।१५।।

विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।१६।।

प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।१७।।

जो भक्ति सह तुम को नवें, नित चण्डिके! अघनाशिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।९।।

जो भक्ति सह तव स्तुति करें, चण्डिके! व्याधि विनाशिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।१०।।

जो भक्त नित पूजें तुम्हें, हे भक्त आश्रय दायिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।११।।

सौभाग्य दो आरोग्य दो, सुख दो, सकल दुख-मोचनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।१२।।

दो बल अधिक बलदायिनी, हे देवि! द्वेष निकन्दिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।१३।।

हे देवि कल्याणी शुभे! समृद्धि दो आनन्दिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।१४।।

घिसते मुकुट-मणि तव चरण, सुर-असुर हे मातंगिनी!
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।१५।।

हे देवि! विद्या दान दो, धन सुयश दो चन्द्राननी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।१६।।

मैं शरण आया, चण्डिके! मद-दलनि-दैत्य प्रचण्डिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।१७।।

चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥१८॥

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥१९॥

हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥२०॥

इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥२१॥

देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥२२॥

देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥२३॥

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम्॥२४॥

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः।
स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम्॥ॐ॥२५॥

॥ इति देव्या अर्गलास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

हे अज चतुर्मुख वन्दिते! हे चार भुज-वर धारिणी !
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।१८।।

श्री कृष्ण तव संस्तुति करें, नित भक्तिसह जगदम्बिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।१९।।

हे हिम-सुता-पति संस्तुते! गज-गामिनी मुख चन्दिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।२०।।

इन्द्राणि-पति सद्भाव पूजित, देवि! असुर निकन्दिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।२१।।

हे चण्डिके! प्राचण्ड भुजबल, दैत्य-दर्प विखण्डिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।२२।।

निज भक्त-जन-मन को सदा, आनन्द अतुलित दायिनी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।२३।।

हो मन समान सुगामिनी, कुल-दुर्ग-भवनिधि-तारिणी।
कर कृपा यश जय रूप दो, हे मातु! रिपुदल भञ्जनी।।२४।।

यह स्तोत्र करके पाठ जो, श्री दुर्गा सप्तशती कहे।
वह जाप-संख्या फल तथा, धन सम्पदा जग में लहे।।२५।।

।। ॐ ।।

इस प्रकार देवी अर्गला स्तोत्र का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।

अथ कीलकम्

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे ॥ १ ॥

सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामभिकीलकम्।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥ २ ॥

सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि।
एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति ॥ ३ ॥

न मन्त्रो नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते।
विना जाप्येन सिद्ध्येत् सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥ ४ ॥

समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः।
कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ॥ ५ ॥

स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः।
समाप्तिर्न च पुण्यस्य तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥ ६ ॥

सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेवं न संशयः।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥ ७ ॥

ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति।
इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥ ८ ॥

यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम्।
स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः ॥ ९ ॥

कीलक मन्त्र

ॐ नमो श्री चण्डिका, ध्यान हृदय मँह धारि।
कहे मार्कण्डेय मुनि, कीलक मन्त्र विचारि।।

नमो विशुद्ध ज्ञान वपु धारी। तीन वेद तव नयन पुरारी।।
अर्द्ध चन्द्र शुभ शीश सुहावे। तव प्रसाद सब मंगल पावे।।१।।

सब बिधि अभिकीलक हिय जानी। पढ़ै मन्त्र साधक सनमानी।।
अन्य मन्त्र जप साधन-लीना। यद्यपि सब सिधि लहहिं प्रवीना।।२।।

उच्चाटन आदिक सिधि पावै। मनोकामना सकल पुरावै।।
सप्तशती जे पढ़हि सुज्ञानी। पठन-मात्र ह्वै सिद्ध भवानी।।३।।

नाहिं मन्त्र नहिं औषध साधन। सब दिक चहूँ फलै आराधन।।
बिना जाप पावै सिधि सोई। सहृदय पाठ करे जो कोई।।४।।

जो अभिलाष हृदय मँह धारै। जगदम्बा करुणामयि सारै।।
पढ़े सप्तशति तजि सन्देहू। उत्तम परम शम्भु मति एहू।।५।।

चण्डीस्तोत्र गुप्त शिव कीन्हा। सुफल तासु कीलित करि दीन्हा।।
विधिवत पाठ करे गुणवन्ता। ताहि पुण्य फल मिलै अनन्ता।।६।।

कृष्ण अष्टमी चौदस दोऊ। भजे भगवती हिय धरि जोऊ।।
सोइ सकल शुभ मंगल पावै। संशय लेश न हृदय धरावै।।७।।

निज तन मन सर्वस्व समरपै। पुनि प्रसाद तिंहिं दे माँ तरपै।।
एहि कीलक शिव निज बल कीली। विधिवत पढ़ै याहि उत्कीली।।८।।

निष्कीलन करि नियमित साधक। सस्वर पाठ करै आराधक।।
जो अस करै लहइ सुख सर्वा। होय सिद्ध अरु गण गन्धर्वा।।९।।

न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते।
नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात्॥ १०॥

ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति।
ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः॥ ११॥

सौभाग्यादि च यत्किञ्चिद् दृश्यते ललनाजने।
तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम्॥ १२॥

शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः।
भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत्॥ १३॥

ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः।
शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः॥ ॐ॥ १४॥

इति देव्याः कीलकस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

निर्भय विचरत तजि सब शंका। छुअत न सपनेउ भय आतंका।।
नाहिं दुःख अपमृत्यु सतावै। त्यागत देह मोक्ष पद पावै।।१०।।

कीलक जानि ताहि परिहारै। पुनि प्रबुद्ध आरम्भ विचारै।।
बिन एहि ज्ञान पाठ कर जोई। मन्द प्रभाव अल्प फल होई।।११।।

नारिन मँह सौभाग्य स्वरूपा। सो सब मातु प्रसाद अनूपा।।
तेहि तें पढ़हु पाठ शुभ पावन। भव भय दुख दारिद्र्य नसावन।।१२।।

लघु फल लहै मन्द स्वर गावे। उच्च स्वर उचरत सिधि पावे।।
एहि लगि सकल पढ़ै स्वर ऊँचा। सप्तशती कर स्तोत्र समूचा।।१३।।

देवी स्तुति क्यों नहिं करें, सफल होयँ सब काम।
पावें जन ऐश्वर्य कुल, सुख-सम्पति धन-धाम।।
मिले भाग्य आरोग्य शुभ, अरि भय सबहि नसाय।
देवी कृपा प्रसाद तें, अन्त परम पद पाय।।१४।।

इस प्रकार देवी के कीलक स्तोत्र का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।

अथ वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः।
विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥ १ ॥

ओर्वप्रा अमर्त्यानिवतो देव्युद्वतः।
ज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥

निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती।
अपेदु हासते तमः ॥ ३ ॥

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि।
वृक्षे न वसतिं वयः ॥ ४ ॥

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः।
नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥ ५ ॥

यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये।
अथा नः सुतरा भव ॥ ६ ॥

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित।
उष ऋणेव यातय ॥ ७ ॥

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥ ८ ॥

इति वेदोक्त रात्रिसूक्तं सम्पूर्णम् ॥

वेदोक्त रात्रि सूक्त

हे रात्रि-रूपा देवि! तुम, इक महत्तत्व स्वरूप हो।
सम्पूर्ण जग की वस्तुओं का, प्रकट ज्ञानद रूप हो॥
अपने रचे जग-जीव के, लखती शुभाशुभ कर्म को।
प्रतिफल-विनिश्चय-हेतु से, धरती विविध श्री रूप हो॥ १॥

देवी! अमर तुम विश्व की, जग-जीव-प्रकृति विकास हो।
नित ज्ञान के आलोक से, करती तमस का नाश हो॥ २॥

चित्-शक्ति! जो तव ब्रह्म-विद्या, उषा देवि सहोदरा।
उस को प्रकट कर नष्ट करती, तम अविद्या से भरा॥ ३॥

हों रात्रि देवी शुभकरी मम, बन अतुल सुखधाम यों।
निज नीड़ में करते सभी, निशि को विहग विश्राम ज्यों॥ ४॥

देवी निशे! सुख मोद भर, तव अंक में सोते सभी।
जैसे मनुज पशु कीट खग, पथ के पथिक औ बाज़ भी॥ ५॥

चित्-शक्ति हे रजनीमयी! बन मुक्तिदा कल्याणकर।
मम काम-कल्मष पाप विनशो, तरन-तारन रूप धर॥ ६॥

अज्ञान-तम-घन, हे उषा! है मम चतुर्दिक छा रहा।
यह भक्त के ॠण सम हरो, तुम ज्ञान ज्योतिर्मय महा॥ ७॥

हे धेनु-दुग्धे! हरिसुते!! तुम सिद्धि-दायक सर्वदा।
पूजन स्तवन कर, मैं रिझाता, हे निशे! तुमको सदा॥
कामादि रिपु सब जय करूँ, अब तव कृपा माहेश्वरी।
तुम स्तोम-सम इस हव्य को, कर लो ग्रहण परमेश्वरी॥ ८॥

इस प्रकार वेदोक्त रात्रि सूक्त का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।

अथ तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥१॥

ब्रह्मोवाच ॥७२॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥ २ ॥

अर्द्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥ ३ ॥

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥ ४ ॥

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥५॥

तन्त्रोक्त रात्रिसूक्त

हे भगवती! तुम विश्व की, स्थिति-पालना-लय रूप हो।
तुम देवि निद्रा अतुल, श्री हरि तेज शक्ति स्वरूप हो।।
कर जोरि बोले ब्रह्म यों, माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।१।।

स्वाहा स्वधा तुम हो सुधा, आह्वान मन्त्र स्वरूपिणी।
नित्या प्रणव अक्षर त्रिधा, लघु दीर्घ प्लुत स्वर-रूपिणी।।
विनती सुनो, हे कालरात्री! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।२।।

तुम अर्द्ध मात्रा मध्य हो, नित बिन्दु में, वाणी परा!
सन्ध्या तुम्हीं हो, देवि! सावित्री तुम्हीं, जननी परा!!
हे जगज्जननी मोहरात्री! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।३।।

तुम ही सृजन करती सदा, तुम ही जगत को धारती।
हो पालती देवी तुम्हीं, तुम ही उसे संहारती।।
हे सर्व-रूपेश्वरि जगन्माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।४।।

रचना समय हो सृष्टि तुम, पालन समय स्थिति रूप हो।
युग-अन्त में, हे रुद्ररूपा! तुम्हीं संहृति रूप हो।।
हे वरा! ईशा!! ईश्वरी माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।५।।

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥ ६ ॥

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥ ७ ॥

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥ ८ ॥

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ ९ ॥

सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥ १० ॥

तुम महा माया महा मोहा, महा स्मृति मेधा महा।
हो महा देवि महासुरी, माता! तुम्हीं विद्या महा॥
करुणा करो, मातंगिनी माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्॥६॥

सबकी प्रकृति हो, तीन गुण की सृष्टि तुम, जगदीश्वरी!
तुम कालरात्री महारात्री, मोहरात्रि भयंकरी॥
सर्वस्व-रूपा गुणाधारा! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्॥७॥

श्री ईश्वरी तुम, ह्रीं तुम्हीं, हो बुद्धि-बोध सुलक्षणा।
हो पुष्टि लज्जा तुष्टि तुम, शुभ शान्ति-क्षान्ति विचारणा॥
हे जगत की कल्याण-कर्त्री! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्॥८॥

हो खड्गिनी शूलिनी घोरा, देवि! गदिनी भय-करी।
तुम बाण परिघ भुशुण्डि निज कर, शंख चक्र धनुर्धरी॥
हे जीव-जग की त्राण-कर्त्री! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्॥९॥

तुम सौम्य रूपा, सौम्य तर, पुनि अखिल सुन्दर-सुन्दरी।
तुम पर अपर से हो परे, माता परम परमेश्वरी॥
हे सर्व-सुन्दरि श्री जगन्माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्॥१०॥

यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥ ११॥

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥ १२॥

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्॥ १३॥

सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ॥ १४॥

प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ॥ १५॥

इति तन्त्रोक्त रात्रि सूक्तं सम्पूर्णम्॥

तुम सर्वरूपा, सद्-असद् की शक्ति घन, अखिलेश्वरी!
तब कौन विध सम्भव, तुम्हारा स्तवन, हे मातेश्वरी!!
हे राज-राजेश्वरि जगन्माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्॥११॥

पालक-सँहारक-सृजक तुमने, किये निद्रा-वश हरी।
सामर्थ्य किसकी है कि जो, तव स्तुति करे, सर्वेश्वरी!!
तेरा महात्म्य अपार, हे माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्॥१२॥

तुमने दिया तन विष्णु शिव को, और मुझको, अम्बिके!
है शक्ति किसमें, कर सके स्तुति आपकी, जगदम्बिके!!
हे सर्व-सर्वेश्वरि जगन्माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्॥१३॥

हे निज उदार प्रभाव से विख्यात, माँ! करुणा करो।
मधु और कैटभ दानवों की, मोह से मति को हरो॥
रक्षा करो मम, हे जगन्माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्॥१४॥

अब शीघ्र श्री हरि विष्णु को, जागृत करो, परमेश्वरी!
दुर्धर्ष रिपु संहार की, मति दो इन्हें, मातेश्वरी!!
हे आर्द्र-चित्ता देवि, श्रीमाँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्॥१५॥

इस प्रकार तन्त्रोक्त रात्रि सूक्त का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।

श्री दुर्गायै नमः

अथ श्री दुर्गासप्तशती

प्रथमचरित्रम्

प्रथमोऽध्यायः

मेधा ऋषि का राजा सुरथ और समाधि को भगवती की महिमा बताते हुए मधु-कैटभ-वध का प्रसंग सुनाना

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

ॐ नमश्चण्डिकायै

'ॐ' ऐं मार्कण्डेय उवाच॥१॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम॥२॥

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः॥३॥

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले॥४॥

श्री दुर्गायै नमः

श्री दुर्गासप्तशती

प्रथम चरित्र

पहला अध्याय

मेधा ऋषि का राजा सुरथ और समाधि को भगवती की महिमा बताते हुए मधु-कैटभ-वध का प्रसंग सुनाना

ध्यान

खड्ग सुचक्र गदा शर हाथा। परिघ भुशुण्डि-शूल धनु साथा॥
मस्तक शंख सुहस्त विराजैं। तीन नयन अँग भूषण साजैं॥
इन्द्रनील मणि कान्ति कपाली। दश मुख-कर-पद शोभिनि काली॥
सुप्त विष्णु लखि संस्तुति गाई। मधुकैटभ वध हित विधि ध्याई॥
सेवौं सब विधि सदा कृपाली। परम दयामयि माता काली॥

ॐ नमो चण्डिके भवानी। ॐ ऐं पावन गुण खानी॥
कह मुनिराज सुनहु श्रुतिसन्ता। मातु चरित अति परम अनन्ता॥ १॥

सूरज सुवन सावर्णि नृप, जो आठवाँ मनु ख्यात है।
द्विजवर! सुनो उसका चरित, इस भाँति बहु विख्यात है॥ २॥

रवि पुत्र इक सावर्णि नामी, जगत में नर वर हुआ।
श्री महामाया की कृपा से, नृपति मन्वन्तर हुआ॥ ३॥

जब पूर्व स्वारोचिष मनू का, चैत्र वंशी काल था।
उस काल में इक सुरथ नामक, भूपती नरपाल था॥ ४॥

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ॥ ५ ॥

तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥ ६ ॥

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥ ७ ॥

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ ८ ॥

ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ ९ ॥

स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥ १० ॥

तस्थौ कञ्चित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥ ११ ॥

सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥ १२ ॥

मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ॥ १३ ॥

वह सब प्रजा का पुत्रवत, पालन सदा करता रहा।
कोला-विध्वंसी, नृपति के, फिर भी हुए कुछ रिपु महा ॥ ५ ॥

उस शत्रु-दण्डी नृपति को, इक दिन समर में घर लिया।
उन दुष्ट रिपुओं ने उसे, कुछ सैन्य संग हरा दिया ॥ ६ ॥

वह सुरथ राजा हार कर, निज देश में जब आ गये।
तब राज्य पर चहुँ ओर से आ, प्रबल रिपुदल छा गये ॥ ७ ॥

यों जान कर कुसमय नृपति का, प्राप्त अवसर कर लिया।
मिल कर कुबुद्धी मन्त्रियों ने, राज्य-धन सब हर लिया ॥ ८ ॥

उन राज्य के अधिकारियों ने, कर्म जब अनुचित किये।
तब नृपति मृगया का बहाना, कर विपिन को चल दिये ॥ ९ ॥

वन में विचरते नृप सुरथ, मेधा ऋषी आश्रम गये।
तहँ सिंह मृग गण शान्त मन, मुनि-शिष्य बहु देखत भये ॥ १० ॥

ऋषिराज ने आदर सहित, सत्कार नरपति का किया।
नृप सुरथ ने रह कर वहीं, कुछ दिवस काल बिता दिया ॥ ११ ॥

अति मोह वश राजा सुरथ, इस सोच में ही खो गया।
मम पूर्वजों का वह नगर, अब रहित मुझ से हो गया ॥ १२ ॥

वे दुष्ट मम अनुचर कमाते, धर्म भी हैं या नहीं!
मद मस्त मेरा शूर हस्ती, रह गया वह भी वहीं ॥ १३ ॥

मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ॥ १४ ॥

अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम्।
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ॥ १५ ॥

सञ्चितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ॥ १६ ॥

तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥ १७ ॥

सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥ १८ ॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥ १९ ॥
वैश्य उवाच ॥ २० ॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥ २१ ॥

पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ॥ २२ ॥

वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ॥ २३ ॥

दुख भोगता होगा वहाँ, मम शत्रुओं के वश हुआ।
निज आश्रितों की चाल से, ज्यों आज मैं बेबस हुआ॥ १४॥

हा! अन्य नृपगण-वश हुए, वे चल रहे होंगे कुपथ।
दुर्बुद्धि-गत ऐश्वर्य में, धन-अपव्ययी होंगे सतत॥ १५॥

सब राज कोष नसाएगा, अति कष्ट से सञ्चित हुआ।
इस विविध चिन्ता-जाल से, राजा सुरथ चिन्तित हुआ॥ १६॥

नरपति सुरथ ने एक दिन, इक वैश्य भी देखा उधर।
हे तात! पूछा कौन तुम, किस हेतु से आये इधर॥ १७॥

अति शोकमय हो दीखते, क्या दुख तुम्हें कोई बड़ा!
हे तात! कुछ मुझको बताओ, कष्ट क्या तुम पर पड़ा॥
सुन कर मधुर नृप के वचन, वह वैश्य दौड़ा जोरि कर।
बोला वचन गद्‌गद गिरा हो, नम्र दृग में नीर भर॥ १८-२०॥

महिनाथ, हा! मैं क्या कहूँ, हूँ कौन औ क्या काम है।
धनवान कुल का वैश्य हूँ, मेरा समाधि सु-नाम है॥ २१॥

मेरे कुपुत्र-कुभार्या ने, द्रव्य मेरा हर लिया।
धन-लोभियों ने, नृपति वर! घर से मुझे बाहर किया॥ २२॥

बान्धव स्वजन गण मम उन्हीं के, आज साथी हो गये।
मैं क्या कहूँ नृपराज! तुम से, भाग्य मेरे सो गये॥
नहिं जानता हूँ कुछ, अहो! क्या हो रही घर की दशा।
इस हेतु ही महाराज! मैं वन में फिरूँ उद्विग्न-सा॥ २३॥

प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः।
किं नु तेषां गृहे क्षेमक्षेमं किं नु साम्प्रतम्॥२४॥

कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः॥२५॥

राजोवाच॥२६॥

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः॥२७॥
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम्॥२८॥

वैश्य उवाच॥२९॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः॥३०॥

किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः।
यैः सन्त्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः॥३१॥

पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते॥३२॥

यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते॥३३॥

करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम्॥३४॥

सुत, बन्धुओं, कुल-नारियों का, क्या कहूँ क्या हाल है।
अति दु:ख से पीड़ित अमित मेरी दशा, महिपाल! है ॥२४॥

मम पुत्र किस विध हैं, नृपतिवर! मन नहीं कुछ मानता।
वे सदाचारी या दुराचारी, नहीं मैं जानता ॥२५॥

सुन कर व्यथा यों वैश्य की, नृप हो उठे चिन्तित महा।
पै सहज हो कर तुरत ही, इस भाँति नरपति ने कहा ॥२६॥

हैं द्रव्य के लोभी सकल, सुत-नारि जब यह जानता।
क्यों नेह में फिर भी उन्हीं के, शोक मिथ्या मानता ॥२७-२८॥

है सत्य, राजन्! वैश्य बोला, आप अब कुछ भी कहो।
सब भाग्य की है बात, जो विपरीत है मेरा अहो ॥२९-३०॥

धन-लोभ में सुत ने पिता का, नेह भी ठुकरा दिया।
मैं क्या करूँ नहिं चित्त फिर भी, निठुरता धारण किया ॥ ३१ ॥

तज दी जिन्होंने प्रीति, पति औ स्वजन की, महाभाग ! है।
नहिं जानता उन के लिए, क्यों चित्त में अनुराग है ॥३२॥

उन बन्धुओं के प्रति हृदय में, प्रेम की है प्यास क्यों।
गुण-हीन दुर्मति वे, विकल मैं भर रहा नि:श्वास क्यों ॥ ३३ ॥

वे प्रेम से हैं शून्य सारे, हूँ सकल विधि जानता।
मैं क्या करूँ फिर भी हृदय, नहिं निठुरता को ठानता ॥ ३४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥३५॥
ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ॥३६॥

समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ॥३७॥
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥३८॥
राजोवाच ॥३९॥
भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ॥४०॥

दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ॥४१॥

जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम।
अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥४२॥

स्वजनेन च सन्त्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ॥४३॥

दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ।
तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥४४॥
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढ़ता ॥४५॥
ऋषिरुवाच ॥४६॥
ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥४७॥

द्विजवर! सुनो, बोले महामुनि, वैश्य औ राजा सुरथ।
मिल संग दोनो चल दिये, मेधा ऋषी आश्रम सुपथ ।। ३५-३६ ।।

जा कर वहाँ मुनिराज से, कर जोरि अभिवादन किया।
तहँ बैठकर नृप सुरथ का, कुछ पूछने को मन किया ।। ३७-३८ ।।

श्रद्धा सहित नृपराज ने, इस भाँति मुनिवर से कहा।
मुनि राज! कुछ पूछन चहौं, कहिए दयालू हो महा ।। ३९-४० ।।

नहिं चित्त मम आधीन, हूँ इस काज पीड़ा पा रहा।
धन-राज्य यद्यपि छुट गया, फिर भी ममत्व सता रहा ।।४१ ।।

यह जानकर भी, आज वह धन राज्य मेरा है नहीं।
कारण कहें, ऋषिराज! क्यों टिकता नहीं यह मन कहीं ।।
यह वैश्य भी आया इधर, घर-द्वार निष्कासित हुआ।
निज पुत्र नारी सेवकों से, घोर अपमानित हुआ ।।४२।।

परित्यक्त हो कर भी इसे, अति प्रीति है निज स्वजन से।
यह और मैं इस भाँति ही, पीड़ित हुए दुख सघन से ।।४३।।

यूँ जान कर भी दोष, मन क्यों मोह से आकृष्ट है।
मति-अन्ध नर की भाँति, हम में मूढ़ता यह स्पष्ट है।।४४-४५।।

बोले महर्षी, नृपति! जग में, यही भाव प्रधान है।
सब प्राणियों को सहज होता, विषय-गोचर ज्ञान है ।।४६-४७।।

विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक्।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ॥४८॥

केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम् ॥४९॥

यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ॥५०॥

मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु ॥५१॥

कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ॥५२॥

लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यसि।
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः ॥५३॥

महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥५४॥

महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥५५॥

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥५६॥

ये जीव भी निज-निज विषय में, भिन्न-भिन्न समर्थ हैं।
कुछ रात में नहिं देखते, कुछ दिवस में असमर्थ हैं।।४८।।

कुछ जीव हैं जो देखते, दिन-रात दोनों में सही।
नर ज्ञानवान अवश्य हैं, पर हैं नहीं केवल वही।।४९।।

सब जीव रखते ज्ञान हैं, पशु और खग-मृग आदि भी।
इन प्राणियों की बुद्धि भी, होती मनुज की भाँति ही।।५०।।

बातें मनुज-पशु-पक्षियों में, अधिकतया समान हैं।
देखो तनिक ये पक्षिगण, जो पूर्ण रखते ज्ञान हैं।।५१।।

ले चोंच में दाना, क्षुधा से आप पीड़ा पा रहे।
पर मोह-वश सन्तान को, अति चाव सहित चुगा रहे।।
करता मनुज है लोभ-वश, सन्तान पर उपकार जो।
रखता स्वजन से किन्तु, प्रत्युपकार की अभिलाष को।।
वह शक्ति जो, नर-व्याघ्र! श्री हरि-मोह-निद्रा रूप है।
विस्मय नहीं इसमें तनिक, उसका प्रभाव अनूप है।।
उस भगवती ने जीव सब, जग को चलाने के लिए।
ममता-भँवरमय मोह के, घन गर्त में पातित किए।।५२-५४।।

हरि महा-माया है प्रबल, जो जगत मोहित कर रही।
ज्ञानी जनों का भी, नृपति! वह ज्ञान देखो हर रही।।५५।।

आकृष्ट माया-मोह से, वह बल सहित करती सदा।
सब चर-अचर को विश्व में, है इक वही रचती सदा।।५६।।

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥५७॥

संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥५८॥

राजोवाच ॥५९॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान् ॥६०॥

ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज।
यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥६१॥

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥६२॥

ऋषिरुवाच ॥६३॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ॥६४॥

तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥६५॥

है वह प्रसन्ना और वरदा, मुक्ति की सद्हेतु है।
वह परा-विद्या भगवती, संसार सागर-सेतु है।।५७।।

वह भगवती ही सर्वदा, जग-कर्म-वश-बन्धन-करी।
वह महामाया मोहिनी, सब ईश्वरों की ईश्वरी।।५८।।

सुन कर वचन ऋषिराज के, भूपाल भक्ति-विभोर हो।
अति नम्रता धारण किये, कर जोरि बोले, हे प्रभो।।५९।।

वह कौन है श्री देवि, जिसको महामाया कह रहे।
भगवन्! जिसे कर के स्मरण, हो अमित सुख मन लह रहे।। ६०।।

वर्णन करो, हे विप्रवर! शुभ जन्म-रूप-स्वभाव को।
उद्भव यथावत् और उनके, कहो कर्म-प्रभाव को।। ६१।।

ऋषिराज! सुनने की यही, मम हार्दिक इच्छा, अहो!
तुम ब्रह्मवेत्ता श्रेष्ठ हो, कर के कृपा हम से कहो।।६२।।

मेधा ऋषी तब नृप सुरथ, औ वैश्य से कहते यथा।
कर चित्त को एकाग्र सुनिए, महामाया की कथा।।६३।।

राजन् प्रवर! वह नित्य है, सर्वत्र है सर्वेश्वरी।
उससे सकल जग व्याप्त, जगदाधार वह परमेश्वरी।।६४।।

हैं वे अजन्मा नित्य, पर सुर-काज-हित, राजन् प्रवर!
प्राकट्य उन का विविध विध, मुझ से सुनो तुम धीर धर।।६५।।

उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ।।६६।।

आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ।।६७।।

विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ।।६८।।

दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ।।६९।।

विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ।।७०।।

निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ।।७१।।

ब्रह्मोवाच ।।७२।।

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारःस्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ।।

अर्द्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ।।

उस काल में उस लोक की, होती प्रजन्मा सिद्ध हैं।
इस भाँति नित्या भगवती, तिहुँ लोक हुई प्रसिद्ध हैं।।
कल्पान्त में जग-जीव सब, एकार्णव-तल्लीन थे।
तब शेष-शय्या पर जगत्पति, योग-निद्रालीन थे।।
हरि कर्ण के शुचि मैल से, दो असुर प्रगटे बल भरे।
मधु और कैटभ नाम धारी, अति भयंकर तन धरे।।
वे असुर दोनों प्रजापति-वध, हेतु थे उद्यत हुए।
हरि-नाभि-कमलासीन थे, अज चतुर्मुख शंकित हुए।।
देखे विकट दोउ दैत्य विधि ने, और निद्रा-स्थित हरी।
उन के जगन हित दत्तचित हो, योग-निद्रा स्तुति करी।।

हे भगवती! तुम विश्व की, स्थिति-पालना-लय रूप हो।
तुम देवि निद्रा अतुल, श्री हरि तेज शक्ति स्वरूप हो।।
कर जोरि बोले ब्रह्म यों, माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी! माँ पाहिमाम्।।६६-७२।।

स्वाहा स्वधा तुम हो सुधा, आह्वान मन्त्र स्वरूपिणी।
नित्या प्रणव अक्षर त्रिधा, लघु दीर्घ प्लुत स्वर-रूपिणी।।
विनती सुनो, हे कालरात्री! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

तुम अर्द्ध मात्रा मध्य हो, नित बिन्दु में, वाणी परा!
सन्ध्या तुम्हीं हो, देवि! सावित्री तुम्हीं, जननी परा!!
हे जगज्जननी मोहरात्री! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।।

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।।

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी।।

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।।

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।।

तुम ही सृजन करती सदा, तुम ही जगत को धारती।
हो पालती देवी तुम्हीं, तुम ही उसे संहारती।।
हे सर्व-रूपेश्वरि जगन्माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

रचना समय हो सृष्टि तुम, पालन समय स्थिति रूप हो।
युग-अन्त में, हे रुद्ररूपा! तुम्हीं संहृति रूप हो।।
हे वरा! ईशा!! ईश्वरी माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

तुम महा माया महा मोहा, महा स्मृति मेधा महा।
हो महा देवि महासुरी, माता! तुम्हीं विद्या महा।।
करुणा करो, मातंगिनी माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

सबकी प्रकृति हो, तीन गुण की सृष्टि तुम, जगदीश्वरी!
तुम कालरात्री महारात्री, मोहरात्रि भयंकरी।।
सर्वस्व-रूपा गुणाधारा! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

श्री ईश्वरी तुम, ह्री तुम्हीं, हो बुद्धि-बोध सुलक्षणा।
हो पुष्टि लज्जा तुष्टि तुम, शुभ शान्ति-क्षान्ति विचारणा।।
हे जगत की कल्याण-कर्त्री! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा।।

सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी।।

यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा।।

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।।

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।।

हो खड्गिनी शूलिनी घोरा, देवि! गदिनी भय-करी।
तुम बाण परिघ भुशुण्डि निज कर, शंख चक्र धनुर्धरी।।
हे जीव-जग की त्राण-कर्त्री! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

तुम सौम्य रूपा, सौम्य तर, पुनि अखिल सुन्दर-सुन्दरी।
तुम पर अपर से हो परे, माता परम परमेश्वरी।।
हे सर्व-सुन्दरि श्री जगन्माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

तुम सर्वरूपा, सद्-असद् की शक्ति घन, अखिलेश्वरी!
तब कौनविध सम्भव, तुम्हारा स्तवन, हे मातेश्वरी!!
हे राज-राजेश्वरि जगन्माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

पालक-सँहारक-सृजक तुमने, किये निद्रा-वश हरी।
सामर्थ्य किसकी है कि जो, तव स्तुति करे, सर्वेश्वरी!!
तेरा महात्म्य अपार, हे माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

तुमने दिया तन विष्णु शिव को, और मुझको, अम्बिके!
है शक्ति किसमें, कर सके स्तुति आपकी, जगदम्बिके!!
हे सर्व-सर्वेश्वरि जगन्माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ।।

प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ।।७३-८७।।

ऋषिरुवाच ।।८८।।
एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा।।८९।।

विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ।।९०।।

निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ।।९१।।

एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ।
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ।।९२।।

हे निज उदार प्रभाव से विख्यात, माँ! करुणा करो।
मधु और कैटभ दानवों की, मोह से मति को हरो।।
रक्षा करो मम, हे जगन्माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।

अब शीघ्र श्री हरि विष्णु को, जागृत करो, परमेश्वरी!
दुर्धर्ष रिपु संहार की, मति दो इन्हें, मातेश्वरी!!
हे आर्द्र-चित्ता देवि, श्री माँ! जगद्धात्री!! त्राहिमाम्।
विश्वेश्वरी माँ! पाहिमाम्।।७३-८७।।

बोले ऋषी, इस भाँति विधि ने, योगनिद्रा स्तुति करी।
उस तमोगुण की अधिष्ठात्री, तामसी में मति धरी।।८८-८९।।

संस्तुति सुनी अज ब्रह्म की, तब तामसी प्रमुदित हुई।
वह योगनिद्रा ब्रह्म के, उपकार को उद्यत हुई।।
मधु कैटभासुर नाश हित, हरि को जगावन के लिए।
उन के नयन मुख नासिका, उर वक्ष भुज त्यागन किए।।९०।।

अव्यक्त जन्मा ब्रह्म के, पहुँची प्रकट हो सामने।
अब योग निद्रा मुक्त थे, सब अंग श्री भगवान के।।९१।।

एकार्णव जल बीच श्री हरि, शेष-शय्या पर जगे।
मधु और कैटभ दुष्ट असुरों, को हरी देखन लगे।।९२।।

क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥९३॥
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥९४॥

उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥९५॥

श्री भगवानुवाच ॥९६॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥९७॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥९८॥

ऋषिरुवाच ॥९९॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥१००॥
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः ।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥१०१॥

ऋषिरुवाच ॥१०२॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता ।
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥१०३॥

अति बल पराक्रम से भरे थे, दुष्ट मधु-कैटभ खड़े।
कर कोप वश दृग लाल, विधि को मारने दोनों अड़े।।
तब वर्ष पञ्च सहस्र हरि, उन से लड़े भुज-युद्ध कर।
हारे न हरि से वे असुर, मद-मत्त बलशाली प्रखर।।
यह देख कर श्री महामाया, ने उन्हें मोहित किया।
औ दुष्ट दानव युगल का, मति ज्ञान सारा हर लिया।।९३-९४।।

माया-विवश बोले असुर, केशव! परम हो वीर तुम।
तव वीरता से तुष्ट हैं, वर माँग लो, रणधीर! तुम।।९५।।

बोले हरी-कुछ और क्या, माँगूँ भला मैं वर, कहो।
इतना कि मेरे हाथ से, रण में तुम्हारा अन्त हो।।९६-९८।।

ऋषिराज बोले, तब असुर, दोनों सुमति-अवरुद्ध थे।
जो श्री हरी को दिया, राजन्! उस वचन से बद्ध थे।।
चहुँ ओर जल को देख कर, बोले असुर ऐसा करो।
जल-शून्य महि पर ही हमारे, विष्णु! प्राणों को हरो।।९९-१०१।।

ऋषि ने कहा, नृपराज! श्री हरि, दानवों के सुन वचन।
विहँसे मधुर मुस्कान अति, मन मुदित हो आनन्द घन।।१०२।।

हरि कहे वचन-तथास्तु! औ शिर-युगल जंघा-स्थल धरे।
फिर निज सुदर्शन चक्र से, वे शिर अलग धड़ से करे।।१०३।।

एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ।।१०४।।

।। ऐं ॐ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधो नाम
प्रथमोऽध्यायः ।।१।।
।।ॐ ।।

जब श्री चतुर्भुज ब्रह्म ने, माँ देवि की संस्तुति करी।
हो महामाया ने प्रकट, सुर-त्राण-हित लीला धरी।।
इस विध हुई उत्पन्न वे, देवी जगत-कल्याण-कर।
उनके प्रभाव अनूप, सुनिये और भी, हे नृपति-वर।।१०४।।

।। ऐं ॐ ।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'मधु-कैटभ-वध' नामक पहले अध्याय का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।। १।।

।। ॐ ।।

मध्यम चरित्र

द्वितीयोऽध्याय:

देवताओं के तेजसे देवीका प्रादुर्भाव और महिषासुर की सेना का वध

ध्यानम्

ॐ अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तै: प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

'ॐ ह्रीं' ऋषिरुवाच ॥१॥

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे ॥२॥

तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम्।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुर: ॥३॥

तत: पराजिता देवा: पद्मयोनिं प्रजापतिम्।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥४॥

यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम्।
त्रिदशा: कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥५॥

मध्यम चरित्र

दूसरा अध्याय

देवताओं के तेज से देवी का प्रादुर्भाव और महिषासुर की सेना का वध

ध्यान

ॐ अक्षमाल परशू गद धारिणि। पद्म कुलिश इषु धनु कर सारिणि।।
कुण्डिक दण्ड शक्ति असि राजैं। ढाल जलज घण्टा कर साजैं।।
भाजन सुरा शूल अरु पाशा। धारि चक्र पूरे जग आशा।।
महिषासुर मद-मर्दन हारी। परम प्रसन्न मुखाकृति बारी।।
पद्म सिंहासन मुक्त विराजी। महालक्ष्मि सेवौं सुख साजी।।

नमो महालक्ष्मी सुख करनी। ॐ ह्रीं जग-आतप हरनी।।
कह मुनीश बोले ऋषि बानी। भूप बनिक सुनु कथा सुहानी।। १।।

कल्पादि में, हे नृपति-वर! अन्यान्य कुछ कारण हुआ।
सुर-असुर में शतवर्ष तक, अतुलित भयंकर रण हुआ।।
सुर-सैन्य के सेनापती, सुर राज शचि-पति इन्द्र थे।
औ महिष आसुर दैत्यपति के, साथ दानव-वृन्द थे।।२।।

अति घोर कर संग्राम, असुरों ने सुरों को जय किया।
फिर प्रबल महिषासुर बली ने, इन्द्र-आसन हर लिया।। ३।।

एहि भाँति सुरगण हार कर, मन में अमित विचलित भये।
आगे किये अज ब्रह्म को, शिव और श्रीहरि पहँ गये।।४।।

उस महिष आसुर के पराक्रम, और अपनी हार का।
सुरवृन्द ने वर्णन किया, उनसे कथा-विस्तार का।।५।।

सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ६ ॥

स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥ ७ ॥

एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम्।
शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ ८ ॥

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ ९ ॥

ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च ॥ १० ॥

अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥ ११ ॥

अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम्।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ १२ ॥

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥ १३ ॥

यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥ १४ ॥
सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्।
वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ॥ १५ ॥

रवि शशि पवन इन्द्रादि पावक, यम वरुण अधिकार को।
जेहि भाँति छीना दैत्य ने, कर घोर रण-व्यवहार को॥६॥

सब देव यों कहने लगे, कर जोरि श्री भगवान से।
सुर घूमते भू-नर-सदृश, हारे असुर बलवान से॥७॥

हे नाथ! हम सब शरण आये हैं, प्रभो! रक्षण करो।
उस दुष्ट महिषासुर बली के, हनन का साधन करो॥८॥

सुन कर वचन सुर-वृन्द के, शिव और मधुसूदन हरी।
दोनों हुए मुख वक्र, उनकी क्रोध से भृकुटी चढ़ी॥९॥

अति कोप में श्री विष्णु-मुख से, तेज अति प्रकटित हुआ।
फिर अज चतुर्मुख और शिव के, वदन से उद्धृत हुआ॥१०॥

इन्द्रादि सुरगण के वपुष, अति तेज प्रकटा उस समय।
उस अतुल तेज-समूह से, त्रिभुवन हुआ सब तेजमय॥११॥

मिल तेज-पुञ्ज महान सब, जाज्वल्य मय अतिशय बना।
चहुँदिश प्रचण्डित ज्यों, दहकते शैल-सी परिकल्पना॥१२॥

वे अतुल तेजस-पुञ्ज, नारी-रूप में परिणत हुए।
उस तेज से तिहुँ लोक, अद्भुत अमित आभायुत हुए॥१३॥

शिव-तेज माँ का मुख बना, यम-तेज से शुचि कच बने।
हरि-तेज से भुजवर बनी, शशि-तेज से दोउ कुच बने॥
सुरराज के तन-तेज से, कटि-मध्य-भाग-छटा बनी।
महितेज पुञ्ज नितम्ब बन, तप-वरुण उरु-जंघा बनी॥१४-१५॥

ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा।
वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका॥१६॥

तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा॥१७॥

भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा॥१८॥

ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः॥१९॥

शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः॥२०॥

शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी॥२१॥

वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात्॥२२॥

कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम्॥२३॥

समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम्॥२४॥

क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च॥२५॥

अज-तेज से दोउ पग बने, रवि-तेज से पद-अँगुलिका।
वसु-तेज से कर-उँगलियाँ, औ धनद-तेज सुनासिका।।१६।।

फिर प्रजापति के तेज से, दसनावली सुन्दर बनी।
औ अनल-तेज-प्रचण्ड से, त्रयनयन द्युति छविवर बनी।।१७।।

मिल युगल-सन्ध्या-तेज फिर, भृकुटी-सुमञ्जुल बन गई।
औ कर्ण-तेज-समीर से, बन कर मनोहर छवि छई।।
सुरवृन्द-पुञ्जित-तेज से, कल्याणिनी तिय तन हुई।
वह दुष्ट-दल-बल-खण्डिनी, देवी शिवा उत्पन हुई।।१८।।

लखि दैव-तेजस-पुञ्जिता के, रूप को हर्षित हुए।
वे सकल महिषासुर-प्रताड़ित, देव-गण प्रमुदित हुए।।१९।।

शिव ने त्रिशूल कराल से, इक शूल दे आदर किया।
हरि ने सुदर्शन चक्र से, ले चक्र देवी को दिया।।२०।।

सुर वरुण ने शुभ शंख औ, निज शक्ति पावक ने दई।
फिर वायु ने धनु बाण तर्कश, दे विपुल शोभा छई।।२१।।

देवेन्द्र ने निज वज्र से, ले वज्र दुर्गा को दिया।
गजराज ग्रीवा से, सु-घण्टा मुदित ले, अर्पण किया।।२२।।

यम ने दिया दण्डक, वरुण ने पाश तब अर्पण किया।
अज ने कमण्डलु, प्रजापति ने अक्षमाला को दिया।।२३।।

शुचि रोम छिद्रों में सकल, रवि ने किरण अपनी दई।
तब काल ने दी ढाल, पावन खड्ग, सुन्दर छवि छई।।२४।।

औ क्षीरनिधि ने स्वच्छ मुक्ता हार, उज्ज्वल वसन को।
अति दिव्य चूड़ामणि सु-कुण्डल, कड़े श्रवणाभरण को।।२५।।

अर्द्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥२६॥
अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥२७॥
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम्।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥२८॥

अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम्।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥२९॥

ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः।
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥३०॥

नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम्।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥३१॥

सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥३२॥

अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत्।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ॥३३॥
चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥३४॥

तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः।
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥३५॥

सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥३६॥

मणि श्वेत बेनी, भुजा-बन्धन, विमल नूपुर घण्टिका।
उर कण्ठ-भूषण मणि-अलंकृत, अँगुलियों में मुद्रिका ॥
फिर विश्वकर्मा ने प्रभायुत, दिव्य इक फरसा दिया।
जो था अकाट्य-अभेद्य, ऐसा कवच तन धारण किया ॥
बहु अस्त्र रूप अनेक साजे, अतुल अनुपम छवि भई।
अम्लान पद्मा उदधि ने, शुचि माल उर-मस्तक छई ॥ २६-२८॥

पुनि जलधि ने श्री देवि को, सुन्दर कमल अर्पण किया।
हिमवान ने बहु रत्न, औ इक सिंह था वाहन दिया ॥२९॥

फिर धनद ने मदिरा भरा, प्याला भवानी को दिया।
अहि शेष ने श्री देवि को, तब महामणि-भूषित किया ॥३०॥

नागेश ने अर्पण किया, मणि-जड़ित नाग सु-हार को।
सुर वसन-भूषण-शस्त्र से, करने लगे शृंगार को ॥३१॥

इस भाँति लहि सम्मान, पुनि-पुनि हास देवी ने किया।
अति शब्द ने, जिसके तुमुल हो, पूर्ण नभ को भर दिया ॥३२॥

उस सिंहनाद महान् के, प्रतिशब्द-घोर-प्रहार से।
काँपन लगे वसुधा उदधि, हिम विन्ध्य मेरु पहाड़-से ॥
तब डोलने पृथ्वी लगी, पर्वत शिखर हिलने लगे।
सुर मुनि मुदित जय कार कर, श्री देवि-स्तुति करने लगे॥ ३३-३४॥

त्रय लोक को लखि संचलित, औ नम्र देव-समाज को।
विस्मय तथा उर क्षोभ उपजा, सकल आसुर-राज को ॥ ३५॥

गर्जा महिष आसुर कुपित, कैसा मचा यह शोर है!
गूँजा भयंकर अटपटा, घन नाद यह किस ओर है ॥ ३६॥

अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ॥ ३७ ॥

पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम्।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥ ३८ ॥

दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम्।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ॥ ३९ ॥

शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम्।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः ॥ ४० ॥

युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ॥ ४१ ॥

अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥ ४२ ॥

अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ॥ ४३ ॥
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत।
बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥ ४४ ॥

युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः।
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥ ४५ ॥

युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः।
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥ ४६ ॥
हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥ ४७ ॥

अति शीघ्रता से चल पड़ा, सँग असुर-सैन्य अथोक थी।
जाकर वहाँ देखा कि देवी, दीप्त तीनों लोक थी।।३७।।

शिर-मुकुट नभ था शोभता, महि दब रही पद-भार से।
पाताल सारे क्षुब्ध थे, जिनकी धनुष-टंकार से।।३८।।

थी व्योम आच्छादित, चहूँ दिश सहस-भुज-विस्तार से।
होने लगा रण देवि का फिर, असुर-सैन्य-अपार से।।३९।।

शस्त्रास्त्र चलते थे, चतुर्दिक चमक-रेखा-जाल था।
वह महिष-आसुर-सैन्यपति, चिक्षुर बली विकराल था।।४०।।

था देवि से रण-रत, वहीं चामर, लिये चतुरंगिनी।
जा भिड़ा, संग उदग्र भी, रथ साठ सहस लिये अनी।।४१।।

दलपति महाहनु चल पड़ा, इक कोटि रथ को साथ ले।
असिलोम सेनापति चला, रथ पञ्च कोटि कतार दे।।४२।।

दानव भयंकर बाष्कल, रथ साठ लक्ष अनी लिये।
लड़ने चला हय-हस्ति-पैदल, सैन्य को आगे किये।।
पुनि दैत्य परिवारित समर में, कोटि रथ संग ले भिड़ा।
ले अर्द्धकोटिक रथ, बिडाल पिशाच भी आगे बढ़ा।।४३-४४।।

तहँ थे महासुर दश सहस, गज-अश्व-रथ ले अन्य भी।
औ दनुज परिवारित सहित, उद्यत समर को थे सभी।।४५।।

करने समर श्री देवि से, धाये प्रबल दानव तहाँ।
सज-धज विविध शस्त्रास्त्र से, गज चढ़ चले योद्धा वहाँ।।
रथ कोटि-कोटि सहस्र हय गज, संग महिषासुर चला।
बहु शक्ति मूसल भिन्दि तोमर, सज समर आतुर चला।।४६-४७।।

युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ॥४८॥

देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥४९॥

लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी।
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥५०॥

मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी।
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी ॥५१॥

चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ॥५२॥

त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ॥५३॥

नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे ॥५४॥

मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥५५॥

खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान्।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥५६॥

असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत्।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥५७॥

लड़ने लगे कुछ देवि से, असि परशु पट्टिश वार कर।
कुछ जूझने योद्धा लगे, बहु शक्ति पाश प्रहार कर।।४८।।

कुछ दैत्य कर में खड्ग धर, देवी-हनन के हित बढ़े।
तब देवि ने शस्त्रास्त्र साधे, होश असुरों के उड़े।।४९।।

काटे दनुज-दल-शस्त्र सब, मुख मन्द स्मिता मुखर रही।
देवर्षि करते थे स्तवन, अति सहज थी वह लड़ रही।।५०।।

कर रही दनु-दल-देह पर, शस्त्रास्त्र वर्षा ईश्वरी।
धाया कुपित ग्रीवा झटकता, देवि-वाहन केसरी।।५१।।

वह बढ़ चला दावाग्नि-ज्यों, रिपु-सैन्य-दल दलते हुए।
नि:श्वास छोड़े देवि ने, उस काल रण करते हुए।।५२।।

गण शत सहस प्रकटित हुए, नि:श्वास के उस जाल से।
लड़ने लगे शस्त्रास्त्र धर, वे असुर-सैन्य-विशाल से।।५३।।

बढ़ दैत्य-वध करते हुए, गण देवि के अति रस-पगे।
रण-रँग नगाड़ों पर कहीं, कहिं शंख-ध्वनि करने लगे।।५४।।

संग्राम-थल छेड़ी गणों ने, भीम-ताल मृदंग पर।
बहु देवि ने मारे असुर, निज गदा-शक्ति-त्रिशूल धर।।५५।।

कितनेक खड्ग-प्रहार से, दल-रुण्ड-मुण्ड उड़ा दिये।
कितनेक घण्टा-शब्द से, दानव प्रबल मूर्छित किये।।५६।।

कुछ गये धरती पर घसीटे, पाश से तन बाँध कर।
कुछ खड्ग-पैनी-धार से, काटे गए अध-बीच धर।।५७।।

विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥५८॥

केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ॥५९॥

श्येनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः।
केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥६०॥

शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः।
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ॥६१॥

एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ॥६२॥

कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥६३॥

कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥६४॥

पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा।
अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ॥६५॥

शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥६६॥

क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६७॥

मारे गदा की मार बहु, आहत असुर धरणी पगे।
बहु कूट मूसल से धरे, शोणित-वमन करने लगे।।५८।।

कर में भयंकर शूल धर, कुछ का हृदय छेदन किया।
कुछ को सतत शर-मार से, कटि-छिन्न कर पातन किया।।५९।।

वे बाज-सम क्रामक असुर, जो देवगण-त्रासित करें।
कितनेक बाँहें छिन्न हो, कितनेक ग्रीवा कटि परें।।६०।।

कितनेक सिर कट-कट गिरे, कुछ खण्ड कीन्हे बीच से।
कितनेक जंघा कटि परे, रण में सने लहु-कीच से।।६१।।

कुछ चीर डाले देवि ने, इक बाँह, इक पद नेत्र में।
कुछ दैत्य कट मस्तक गिरे, फिर उठ लड़े रण क्षेत्र में।।६२।।

केतक असुर शिर-हीन हो, ले विविध आयुध रण करें।
कितनेक नाचें तूर्य-लय पर, रुण्ड-गण-रण-रस भरें।।६३।।

कर शक्ति-खाण्डे-खड्ग ले, काबन्ध कुछ रण धारते।
केतक पुकारें, 'ठहर जा!' श्री देवि को ललकारते।।६४।।

तहँ घोर रण संग्राम में, गज-हय-दनुज कट-कट परे।
मृत देह से महि पट गई, रथ-छत्र शोणित में तरे।।६५।।

रण में असुर-अश्वादि-तन से, रक्त-धारा झर रही।
कुछ काल ही में समर-भू पर, बन बृहद् सरिता बही।।६६।।

जगदम्बिका ने नष्ट की द्रुत, असुर-सैन्य-कराल को।
ज्यों अग्नि क्षण में फूँकती, तृण-काष्ठ-ढेर विशाल को।।६७।।

स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ।।६८।।

देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः।
यथैषां तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ।।६९।।

।।ॐ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी
माहात्म्ये महिषासुर सैन्यवधो नाम
द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

।।ॐ।।

औ सिंह भी अति क्रुद्ध हो, गति पवन-सम चलने लगा।
उस दैत्य-दल को गर्ज कर, नख-दन्त से दलने लगा।।६८।।

देवी गणों के त्रास से, जब दैत्य भय खाने लगे।
सुर वृन्द निज-निज यान चढ़, दल-पुष्प बरसाने लगे।।६९।।

।। ॐ ।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'महिषासुर की सेना का वध' नामक दूसरे अध्याय का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।।२।।

।।ॐ।।

तृतीयोऽध्याय

सेनापतियों सहित महिषासुर का वध

ध्यानम्

ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥१॥

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम्॥२॥

स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः।
यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः॥३॥

तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान्।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम्॥४॥

चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम्।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः॥५॥

सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः॥६॥

सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान्॥७॥

तीसरा अध्याय

सेनापतियों सहित महिषासुर का वध

ध्यान

ॐ उदित सहस रवि दिव्य प्रकाशा। सुधृत अरुण क्षोमाञ्चल वासा॥
मुण्डमाल गल अनुपम राजै। चन्दन अरुण लेप कुच साजै॥
कर कमलनि जप माल सुभद्रा। विद्या अभय वरद कर मुद्रा॥
त्रिनयन शोभित मुख अरविन्दा। शिरमणि मुकुट बँध्यो सँग चन्दा॥
पद्मासना अम्बिके माता। पुनि पुनि वन्दौं पद-जलजाता॥

मार्कण्डेय कहेउ मुनि ज्ञानी। मेधा ऋषि बोले अस बानी॥
मातु चरित पुनि पुनि मैं गाऊँ। ध्यान धरूँ चरणन सिर नाऊँ॥१॥

नृपराज! महिषासुर अनी, जब हार रण तज भज चली।
तब सैन्य अधिपति सैन्य ले, धाया समर चिक्षुर बली॥२॥

एहि भाँति देवी पर असुर ने, जाल-शर-बौछार की।
जिमि लसत शृंग-सुमेरु पर, वर्षा घनी जल-धार की॥३॥

शर-जाल देवी ने सहज, काटे असुर बलवान के।
घुड़-सारथी औ वाजि बहु, मारे प्रचण्डित बाण से॥४॥

रिपु चाप को, ऊँची ध्वजा को, तोड़ कर तत्काल में।
छेदन किया तन असुर का, औ ढक दिया शर-जाल में॥५॥

धनु कट गया, रथ फट गया, जब मर गये हय-सारथी।
असि-खेट ले चिक्षुर चला, उस वेग की सीमा न थी॥६॥

तलवार मारी दैत्य ने, जा सिंह के श्री भाल पर।
पुनि वार कीन्हा देवि की, वर वाम-भुजा विशाल पर॥७॥

तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥८॥

चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥९॥

दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत।
तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः ॥१०॥

हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥११॥

सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम्।
हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥१२॥

भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥१३॥

ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥१४॥

युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥१५॥

ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥१६॥

उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥१७॥

राजन्! सुनो भुज देवि के, वह खड्ग लग टुकड़े हुई।
तब क्रोध में भर दैत्य ने, इक शूल निज कर में लई।।८।।

फैंकी तुरत श्री देवि पर, चिक्षुर बली रण-दक्ष ने।
नभ बीच वह जाज्वल्य-युत, रवि-सम चली तन भक्षने।।९।।

निज शूल से रिपु-शूल के, कर सैकड़ों टुकड़े दिये।
फिर देवि ने भुज-शीश दानव के, अलग धड़ से किये।।१०।।

जब युद्ध में सेनापती, चिक्षुर असुर मारा गया।
तब देव-द्रोही दैत्य चामर, समर गज चढ़ आ गया।।११।।

कर लक्ष्य देवी को असुर ने, शक्ति भीषण छोड़ दी।
हुंकार से ही अम्बिका ने, तुरत उसको तोड़ दी।।१२।।

यह देख देवी पर असुर ने, शूल मारा क्रोध कर।
श्री देवि ने काटा उसे भी, छोड़ तीखे पुञ्ज-शर।।१३।।

तब सिंह उछला देवि का, गज-शीश पर वह जा चढ़ा।
उस दैत्य चामर से तहाँ, भुज-युद्ध करने को बढ़ा।।१४।।

पुनि सिंह औ चामर असुर, गज से मही पर आ पड़े।
औ विविध भाँति प्रहार कर, दोनों परस्पर फिर भिड़े।।१५।।

नभ में उछलकर सिंह ने, फिर दैत्य पर धावा किया।
नख-वार से उस दुष्ट का, धड़ से अलग शिर कर दिया।।१६।।

श्री ने उदग्र हना असुर, बहु तरु-शिलादिक वार कर।
हत किया दैत्य कराल, करतल-दन्त-मुष्टि-प्रहार कर।।१७।।

देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम्।
बाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम्॥१८॥

उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम्।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी॥१९॥

बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥२०॥

एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः।
माहिषेण **स्वरूपेण** त्रासयामास तान् गणान्॥२१॥

कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान्।
लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान्॥२२॥

वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले॥२३॥

निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका॥२४॥

सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च॥२५॥

वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः॥२६॥

धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः॥२७॥

उद्धत वधा श्री देवि ने, हो कुपित गदा विशाल से।
शर मार मारे ताम्र-अन्धक, बाष्कल भिँदिपाल से।।१८।।

उग्रास्य दैत्य महाहनू, औ उग्रवीर्य कराल को।
देवी त्रिनेत्रा ने हना, धर निज त्रिशूल विशाल को।।१९।।

तलवार मार बिडाल का, मस्तक अलग धड़ से किया।
शर मार, दुर्धर-दुरामुख को, यमपुरी पहुँचा दिया।।२०।।

निज दैत्य मरते देख कर, बन महिष महिषासुर चला।
देवी गणों को त्रास देने, क्रोध से आतुर चला।।२१।।

बहु त्रास वह देने लगा, देवी गणों को कोप कर।
निज घोर तुण्ड-प्रहार से, पद सींग खुर औ पुच्छ धर।।२२।।

केतक हने गण भ्रमण से, मुख-नाद से औ वेग से।
केतक धराशायी किये, नि:श्वास के आवेग से।।२३।।

गण सैन्य को भू पर गिरा, वह सिंह पर धाया असुर।
उत्पात उसका देख, उपजा देवि के अति क्षोभ उर।।२४।।

वह क्रोध में भर निज खुरों से, खोदने महि को लगा।
औ सींग से गिरि-खण्ड कर, गर्जा अमित रण-रस-पगा।।२५।।

उसके भ्रमण-अतिवेग से, थोथी सकल वसुधा भई।
औ पुच्छ-दण्ड-झकोल से, हट सिन्धु की सीमा गई।।२६।।

दोउ सींग की अति घूम से, नभ मेघ-मण्डल फट गये।
औ श्वास से गिरि खण्ड, उड़-उड़ कर मही पर अट गये।।२७।।

इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम्।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत्॥२८॥

सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम्।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे॥२९॥

ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत॥३०॥

तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः।
तं खड्गचर्मणा सार्द्धं ततः सोऽभून्महागजः॥३१॥

करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत॥३२॥

ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः।
त थैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम्॥३३॥

ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना॥३४॥

ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान्॥३५॥

सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः।
उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम्॥३६॥

देव्युवाच॥३७॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः॥३८॥

यों कुपित वह माहिष असुर, निज ओर आता देख कर।
उसके हनन-हित, चण्डिका-उर में गया अति कोप भर ।।२८।।

निज पाश फैंका चण्डिका ने, बाँध महिषासुर दिया।
बँधकर महारण में असुर ने, महिष-तन त्यागन किया ।।२९।।

बन सिंह धाया, अम्बिका झपटी तुरत उस दैत्य पर।
शिर काटती उसका, तभी नर बन गया वह खड्ग धर ।।३०।।

कर बाण वर्षा देवि ने, बेंधा पुरुष-असि-ढाल को।
आया तुरत वह दैत्य धर, गजराज-देह-विशाल को ।।३१।।

खींचन लगा निज शुण्ड से, वह सिंह को अति गर्ज कर।
पै तुरत ही श्री देवि ने, वह शुण्ड काटी खड्ग धर ।।३२।।

फिर पूर्व जैसा तन महिष का, दैत्य ने धारण किया।
चर-अचर जीव-समूह-सह, त्रैलोक व्याकुल कर दिया ।।३३।।

लखि महिष-तन में दैत्य को, शुचि पान मधु करने लगी।
श्री भगवती कर दृग अरुण, अति हास मृदु हँसने लगी ।।३४।।

बल-वीर्य-दर्पित दैत्य भी, तब क्रोध कर गर्जन लगा।
निज सींग से श्री देवि पर, गिरि फैंक रण तर्जन लगा ।।३५।।

शर-पुञ्ज से कर चूर्ण वह, मतवारि-सी मद-रस-पगी।
कुछ अटपटे-से बयन हँसि, यों दैत्य से कहने लगी ।।३६।।

बोली गरज ले, मूढ़! क्षणभर, जब तलक मधु पी न लूँ।
फिर देव गर्जेंगे यहाँ, जब मैं तुझे रण में बधूँ ।।३७-३८।।

ऋषिरुवाच ॥३९ ॥

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम्।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥४०॥

ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः।
अर्द्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः ॥४१॥

अर्द्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥४२॥

ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत्।
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥४३॥

तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४४॥

॥ ॐ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवी माहात्म्ये महिषासुरवधो नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥३॥
॥ ॐ ॥

इस भाँति कह, नृपराज! चण्डी चढ़ी उस पर उछल कर।
पद से दबा कर दैत्य, मारा शूल उसके कण्ठ पर।।३९-४०।।

पद से दबे रह कर तुरत, वह रूप तजि बाहिर हुआ।
पै देवि-शक्ति-प्रभाव से, रुक बीच ही में थिर हुआ।।४१।।

वह अर्द्ध तन से भी दनुज, रण देवि से करने लगा।
मह-खड्ग मारी देवि ने, सिर कट असुर का महि पगा।।४२।।

तब दैत्य सेना सकल, हा-हाकार कर रण से भगी।
सुर गण हृदय, अनुभूति हर्षोल्लास की होने लगी।।४३।।

सब देव दिव्य महर्षि गण, श्री देवि-स्तुति करने लगे।
नभ अप्सरा नाचन लगी, गन्धर्व सुर भरने लगे।।४४।।

।।ॐ।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'महिषासुर वध' नामक तीसरे अध्याय का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।।३।।

।।ॐ।।

चतुर्थोऽध्यायः

इन्द्रादि देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति

ध्यानम्

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः ।।

'ॐ' ऋषिरुवाच ।।१।।

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ।।२।।

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ।। ३ ।।

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ।। ४ ।।

चौथा अध्याय

इन्द्रादि देवताओं द्वारा देवी की स्तुति

ध्यान

ॐ कालमेघ सम प्रभा सुहायी। निज कटाक्ष अरि कुल भयदायी।।
जासु मौलि शुभ चन्द्र सुसाजै। शंख त्रिशूल चक्र असि राजै।।
तीन नयन शुभ शोभित माता। सिंह कन्ध राजित वर गाता।।
दिव्य कान्ति जस त्रिभुवन छाई। देव वृन्द चहुँ ओर घिराई।।
घ्यावहुँ दुर्गा जया भवानी। सेवत सिद्धि लहइ जग प्राणी।।

कहै मुनीश्वर मार्कण्डेया। मातु चरित वर्णत शुभ ध्येया॥
मेधा ऋषि कहि कथा बुझाई। सुरथ समाधि सुनहु चितलाई॥ १।।

राजन्! सुनो, जब देवि ने, सब नष्ट दानव दल किया।
सुर-द्रोहि महिषासुर बली को, मार महि में मल दिया।।
करने लगे संस्तुति विविध, अति मुदित इन्द्रादिक हुए।
श्री देवि के शुभ नमन-हित, कर जोरि नत-मस्तक हुए।।२।।

सुर-वृन्द शक्ति समूह की, मूरत तुम्हीं हो, अम्बिके!
सुरगण महा ऋषि पूजते, तुमको सदा, जगदम्बिके!!
हम भक्ति सह करते नमन, हे माँ! तुम्हें, परमेश्वरी।
जय जयति जय मातेश्वरी।।३।।

हे चण्डिके! तव विपुल बल का, पार क्या पाएँ कहीं।
श्री विष्णु अज शिव शेष भी, जब पार पा सकते नहीं।।
हर भय-अशुभ, जग पालिए, कर श्रेष्ठ मति दृढ़, ईश्वरी!
जय जयति जय मातेश्वरी।।४।।

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥५॥

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु॥६॥

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या॥७॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च॥८॥

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि॥९॥

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री॥१०॥

पापात्म गृह दारिद्र्य तुम, पुण्यात्म के गृह लक्ष्मी।
पावन हृदय में बुद्धि निर्मल, लाज सतकुल में तुम्हीं।।
श्रद्धा सुजन में, माँ! तुम्हीं, तव नमन जग पालन करी।
जय जयति जय मातेश्वरी।।५।।

किस विध अचिन्त्य स्वरूप तव, हे देवि ! हम वर्णन करें।
दल-दनुज-नाशक तव पराक्रम, मातु किमि चिन्तन धरें।।
रण बीच जो तुमने किया, अद्‌भुत चरित, देवेश्वरी !
जय जयति जय मातेश्वरी।।६।।

जग अंश तव, आश्रय जगत की, सृजन-कारण-युक्त हो।
त्रिगुणात्मिका हो, किन्तु फिर भी, सकल दोष-विमुक्त हो।।
हरि हर न पाएँ पार, तुम आद्या प्रकृति, परमेश्वरी !
जय जयति जय मातेश्वरी।।७।।

शुचि यज्ञ में जब विप्र गण, तव नाम ले स्वाहा कहें।
तब देव गण हो तृप्त, निज-निज भाग को सादर लहें।।
तुम पितर गण की तृप्ति-कारण, हो स्वधा जगदीश्वरी !
जय जयति जय मातेश्वरी।।८।।

तुम दोष-रहिता परा-विद्या, मुक्ति-साधन रूप हो।
तुम ही अतुल आचिन्त्य रूपा, महा व्रता-स्वरूप हो।।
भजते जितेन्द्रिय तत्वविद् मुनि, मोक्ष-इच्छुक, ईश्वरी !
जय जयति जय मातेश्वरी।।९।।

इक तुम हि वाणी-रूप हो, ऋग-यजुर्वेद पुनीत हो।
तुम मधुर पाठक भक्त हित, मृदु साम-स्वर-उद्‌गीथ हो।।
वेद त्रयी जग-सृजक-पालक, माँ ! तुम्हीं भव-दुख हरी।
जय जयति जय मातेश्वरी।।१०।।

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरि त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा॥ ११॥

इषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण॥ १२॥

दृष्टवा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन॥ १३॥

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य॥ १४॥

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना॥ १५॥

धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन॥ १६॥

सब शास्त्र सार विचार ले, वह श्रेष्ठ मेधा रूप तुम।
भव-सिन्धु-दुस्तर तरन को, हे गौरि! नाव-स्वरूप तुम।।
तुम अनासक्ता, विष्णु-उर्वशि, शिव-प्रतिष्ठित सहचरी।
जय जयति जय मातेश्वरी।। ११ ।।

द्युति शरद पूरण चन्द्र-मुख, मृदु हास युत स्वर्णिम छटा।
तव रूप मनहर देख कर भी, कुपित महिषासुर डटा।।
कैसे उठाया शस्त्र उसने, बात है अचरज भरी।
जय जयति जय मातेश्वरी।। १२ ।।

तव बंक भृकुटी देख कर भी, रहा वह जीवित खड़ा।
नहिं तुरत अन्त हुआ असुर का, और भी अचरज बड़ा।।
क्या काल-सम तव दृष्टि से, कोई बचा, रुद्रेश्वरी!
जय जयति जय मातेश्वरी।। १३ ।।

हों मुदित, देवी! हर्ष तव, जग-अभ्युदय, जगदम्बिके!
जब कुपित होती, शीघ्र ही, कुल-ध्वंस करती, चण्डिके!!
यह बात महिषासुर समर में सिद्ध, माँ! तुमने करी।
जय जयति जय मातेश्वरी।। १४ ।।

वे ही सुजन धन-धर्म-गुण, यश-कीर्ति पाते हैं सदा।
सेवक सुपुत्र कलत्र सह, कृत-कृत्य होते सर्वदा।।
हे प्रगति दायिनि! आपने, जिन पर कृपा अपनी करी।
जय जयति जय मातेश्वरी।। १५ ।।

हे स्वर्ग दायिनि! तव कृपा, नर नित्य धर्म-प्रयुक्त हो।
शुभ आचरण औ कर्म करता, अतुल श्रद्धा युक्त हो।।
निश्चय तुम्हीं फलदायिनी, त्रय लोक में, भुवनेश्वरी!
जय जयति जय मातेश्वरी।। १६ ।।

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥१७॥

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥१८॥

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥१९॥

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥२०॥

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥२१॥

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥२२॥

निज स्मरण से जग-जीव की, दारिद्र्य-दुख-भय हारिणी।
है कौन तुम सम अन्य, दुर्गे! व्यग्र जग-उपकारिणी ।।
जो स्वस्थ मन भजते, उन्हें वर बुद्धि देती, ईश्वरी !
जय जयति जय मातेश्वरी ।। १७ ।।

भूलोक की सुख-शान्ति हित, तुम हो असुर-गण मारती।
उन नरक-गामी पापियों का, सुहित ही चित धारती ।।
निज कर सँहारे जो, उन्होंने प्राप्त गति उत्तम करी।
जय जयति जय मातेश्वरी ।। १८ ।।

क्या देखते ही शत्रु को तुम, भस्म कर सकती नहीं ?
देखी न अतुल उदारता, पै देवि! तुम-जैसी कहीं ।।
शुचि शस्त्र से मर कर, अभय वे स्वर्ग पाते, ईश्वरी !
जय जयति जय मातेश्वरी ।। १९ ।।

लखि तेज अतुलित खड्ग, औ तव शूल-अग्र-प्रभा घनी।
नहिं दानवों की दृष्टि विनशी, थी यथावत ही बनी ।।
मुख चन्द्र तव आभा, सकल वे, देखते थे मन हरी।
जय जयति जय मातेश्वरी ।। २० ।।

दुर्वृत्तिहर तव शील, अतुल अचिन्त्य, हे शोभामयी !
तव बल-पराक्रम, देवि माँ! है दैत्य-नाशक सुर-जयी ।।
इस भाँति हो निज शत्रुओं पर, भी अमित करुणा करी।
जय जयति जय मातेश्वरी ।। २१ ।।

वर दायिनी! तव तेज विक्रम, की कहीं तुलना नहीं।
रिपु को भयंकर, किन्तु मनहर, रूप नहिं देखा कहीं ।।
उर करुण, पै रण-निठुर, त्रिभुवन में तुम्हीं इक, ईश्वरी !
जय जयति जय मातेश्वरी ।। २२ ।।

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥२३॥

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥२४॥

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥२५॥

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥२६॥

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥२७॥

ऋषिरुवाच ॥२८॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥२९॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥३०॥

हे मातु ! रिपु-दल नष्ट कर, त्रैलोक का रक्षण किया।
तुमने समर में मार अरि-कुल, स्वर्ग लोक पठा दिया।।
है नमन तुम को, देवि ! तुम उन्मद असुर-गण भय-हरी।
जय जयति जय मातेश्वरी।।२३।।

घण्टा सुखड्ग त्रिशूल से, रक्षा करो नित, अम्बिके !
निज महा धनु-प्रत्यञ्च की, टंकार से, जगदम्बिके !!
हम हैं शरण, माँ ! आपकी, रक्षा करो, सर्वेश्वरी !
जय जयति जय मातेश्वरी।।२४।।

दिशि पूर्व पश्चिम दक्षिणी, औ उत्तरी दिक, चण्डिके !
चहुँ दिश घुमाकर शूल निज, रक्षो चतुर्दिक, चण्डिके !!
हर भाँति कर करुणा सदा, रक्षा करो, भुवनेश्वरी।
जय जयति जय मातेश्वरी।।२५।।

त्रय लोक में जितने तुम्हारे, सौम्य-घोर स्वरूप हैं।
रक्षा करें जग की, हमारी, जो विचरते रूप हैं।।
हर विघ्न से भूलोक की, रक्षा करो, परमेश्वरी !
जय जयति जय मातेश्वरी।।२६।।

कर पल्लवों में धारती, शस्त्रास्त्र जो, जगदम्बिके !
सब ओर से उनसे करो, रक्षा हमारी, अम्बिके !!
हे माँ ! अभय वरदायिनी, हे खड्ग शूल गदा धरी !
जय जयति जय मातेश्वरी।।२७।।

ऋषि ने कहा-श्रीजगन्माँ, शुचि लेप-गन्ध-प्रसंग से।
नन्दन विपिन के पुष्प, औ अति भक्ति-प्रेम-उमंग से।।
पूजी गई जब, नृपतिवर ! सुर वृन्द से सर्वेश्वरी।
तब भई देवि प्रसन्न-वदना, भगवती परमेश्वरी।।२८-३०।।

देव्युवाच ॥३१॥

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥३२॥

देवा ऊचुः ॥३३॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते ॥३४॥

यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥३५॥

संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥३६॥
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम्।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥३७॥

ऋषिरुवाच ॥३८॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥३९॥

इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥४०॥

पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत्।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥४१॥
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥४२॥

॥ ह्रीं ॐ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये शक्रादिस्तुतिर्नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

॥ ॐ ॥

फिर देवि ने यों सकल, श्रद्धा-प्रणत देवों से कहा।
अभिलाष जो भी हो तुम्हारी, माँग लो वर मन चहा।।३१-३२।।

तब देव बोले, अम्बिके ! पूरण मनोरथ सब किया।
अवशेष ही अब क्या रहा, जब सभी कुछ हमको दिया।।३३-३४।।

रिपु महिष आसुर मार कर, बाधा हमारी सब हरी।
देना चहो वरदान फिर भी, दो यही माहेश्वरी।।३५।।

जब जब स्मरण कर आपका, हम ध्यान, हे माता ! धरें।
देकर हमें दर्शन, हमारे विकट सब संकट हरें।।
इन स्तोत्र-स्तवनों से, करे नर आप की स्तुति जो सदा।
उसको सतत समृद्ध कर, हम पर प्रसन्न रहो सदा।।३६-३७।।

बोले ॠषी, सुन सुर-विनय, देवी अमित हर्षित भई।
कहि एवमस्तु ! कृपालिनी, नृप ! धान-अन्तर हो गई।।३८-३९।।

त्रय लोक की हित-चिन्तिका, माँ अम्बिका की यह कथा।
सुर-तेज प्रकटी जौन विध, भूपति ! कही मैंने यथा।।४०।।

सुर गण सकल हित-कारिणी, प्रगटी पुनः श्री अम्बिका।
रिपुदैत्य शुम्भ-निशुम्भ-वध, औ जगत-हित जगदम्बिका।।
जिस भाँति प्रगटी गौरि-तन से, नृपति ! नूतन रूप धर।
वृत्तान्त वह मुझसे सकल, सुनिये सभी श्रोता प्रवर।।४१-४२।।

।। ह्रीं ॐ ।।
इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी माहात्म्य में 'शक्रादि स्तुति' नामक चौथे अध्याय
का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।।४।।
।।ॐ।।

उत्तर चरित्र

पञ्चमोऽध्यायः

देवताओं द्वारा देवीकी स्तुति, चण्ड-मुण्डके मुखसे अम्बिका के रूपकी प्रशंसा सुनकर शुम्भका उनके पास दूत भेजना और दूत का निराश लौटना

ध्यानम्

ॐ घण्टा शूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

'ॐ क्लीं' ऋषिरुवाच॥१॥

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात्॥२॥

तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम्।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च॥३॥

तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः॥४॥

हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम्॥५॥

उत्तर चरित्र

पाँचवाँ अध्याय

देवताओं द्वारा देवी की स्तुति, चण्ड-मुण्ड के मुख से अम्बिका के रूप की प्रशंसा सुनकर शुम्भ का उनके पास दूत भेजना और दूत का निराश लौटना

ध्यान

ॐ घण्टा शूल कञ्ज कर राजैं। अपर हस्त हल शंख विराजैं।।
मूसल चक्र बाण धनु धारी। शरद् चन्द्रकान्ता छवि प्यारी।।
गौरी देह समुद्भव रूपा। तीन लोक आधार अनूपा।।
शुम्भ आदि निशिचर मददमनी। भजौं सरस्वति भव-रुज-शमनी।।

महा सरस्वति ज्ञान प्रदायिनि। ॐ क्लीं चेतन गुण दायिनि।।
सुनहु तात बोले मुनिराया। एहिविध मातु सुजस ऋषि गाया।। १।।

भूपति! सुनो कल्पादि में, दो दैत्य शुम्भ निशुम्भ थे।
दारुण भयंकर अति बली, छल-बल-निपुण मद-अन्ध थे।।
निज बल-प्रचण्ड-घमण्ड से, त्रैलोक को जय कर लिया।
सब यज्ञ भाग अधीन कर, सुर इन्द्र आसन हर लिया।। २।।

फिर सूर्य चन्द्र कुबेर यम, सुर वरुण के अधिकार को।
उन दैत्य दोनों ने किया, अधिकृत सभी व्यवहार को।। ३।।

पवनाग्नि का पद छीन, सुरगण स्वर्ग निष्कासित किये।
इस भाँति असुरों ने सकल, सुर-वृन्द अपमानित किये।। ४।।

होकर तिरस्कृत ध्यान सब, श्री देवि का धरने लगे।
अपराजिता उस देवि को, सुमिरन सभी करने लगे।। ५।।

तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥६॥

इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥७॥

देवा ऊचुः ॥८॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥९॥

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥१०॥

कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥११॥

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥१२॥

अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥१३॥

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै । नमस्तस्यै । नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४-१६॥

यह वर दिया था देवि ने, तुम विकट आपति-काल में।
मेरा स्मरण करना, हरूँगी विघ्न सब तत्काल में।।६।।

यह सोच कर सब देव गण, पर्वत हिमालय पर गये।
श्री विष्णु माया की तहाँ, सुस्तुति विविध करते भये।।७-८।।

जय नमो देवी महा देवी, हे शिवे! शत शत नमन।
भद्रा प्रकृति सुखदायिनी, माता! तुम्हें नियमित नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।९।।

रौद्रा सुनित्या देवि गौरी, सुख स्वरूपा को नमन।
जय जगद् धात्री ज्योत्स्ना छवि, चन्द्र रूपा को नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।१०।।

शुभ राजलक्ष्मी को नमन, ऋधि-सिद्धिदात्री को नमन।
शर्वाणि नैर्ऋति देवि श्री, कल्याण-कर्त्री को नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।११।।

जय देवि दुर्गा सर्वकारिणि, दुर्ग पारा को नमन।
धूमावती शुभ ख्याति कृष्णा, सतत सारा को नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।१२।।

अति सौम्य औ अति रौद्र रूपा, देवि को सविनय नमन।
कृति जग प्रतिष्ठा रूपिणी को, विनत श्रद्धामय नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।१३।।

तुम विष्णुमाया ख्यात हो, माँ! सर्व जग-विख्यात हो।
तुम महामाय ज्ञात हो, बहुविध करें तुमको नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।१४-१६।।

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥१७-१९॥

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥२०-२२॥

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥२३-२५॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥२६-२८॥

या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥२९-३१॥

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥३२-३४॥

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥३५-३७॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥३८-४०॥

तुम चेतना अभिरूपिणी, जग-जीव-प्राण स्वरूपिणी।
हे सर्वगत सद्रूपिणी! सादर करें तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।१७-१९।।

तुम प्राणियों में भगवती, सद्बुद्धि रूपा सतमती।
हे ज्ञान-प्रज्ञ प्रभावती! सविनय करें तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।२०-२२।।

तुम रूप-निद्रा धारिणी, जग-जीव निज वश कारिणी।
हे देह की उपकारिणी! श्रद्धा सहित तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।२३-२५।।

तुम क्षुधा घोर अपार हो, तुम जगत प्राणाधार हो।
तन-मन सँवारन हार हो, हे देवि! है तुम को नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।२६-२८।।

तुम प्राणियों में सर्वदा, छाया स्वरूपा हो सदा।
हे सकल जन-मन सुख प्रदा! कर जोरि है तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।२९-३१।।

तुम शक्तिरूप विशाल, माँ! तुम काल की भी काल, माँ !
हो रक्षिणी तत्काल, माँ! सादर करें तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।३२-३४।।

तुम रूप तृष्णा साजती, हो हृदय मध्य विराजती।
बन दु:ख-रूपा राजती, हम नित करें तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।३५-३७।।

अन्त: करण में स्थित हुयी, माँ! तुम क्षमा करुणामयी।
तुम हो सकल तापञ्जयी, सादर करें तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।३८-४०।।

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।४१-४३।।

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।४४-४६।।

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।४७-४९।।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।५०-५२।।

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।५३-५५।।

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।५६-५८।।

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।५९-६१।।

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।६२-६४।।

जग-जाति रूप प्रसिद्ध हो, तुम सब वरण में सिद्ध हो ।
कल्याण हित प्रतिबद्ध हो, करते सभी तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।४१-४३।।

तुम देवि! लज्जा रूप हो, दृग-मध्य रूप अनूप हो ।
मंगल करी सद्‌रूप हो, सविनय करें तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।४४-४६।।

हे देवि! शान्ति स्वरूप तुम, जग-जीव की सुख रूप तुम ।
हो सुखद कोश अनूप तुम, सादर करें तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।४७-४९।।

श्रद्धा तुम्हीं करुणा करी, हे भक्त आपद-भय-हरी!
तुम सकल जन मंगल भरी, नित-नित करें तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।५०-५२।।

तुम कान्ति रूप ललाम हो, देवी ! नयन अभिराम हो ।
जग-मोह-माया-धाम हो, सब ही करें तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।५३-५५।।

तुम देवि लक्ष्मि स्वरूप हो, भव में विभव का रूप हो ।
तुम चञ्चला प्रतिरूप हो, सादर करें तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।५६-५८।।

हो शुद्ध वृत्ति स्वरूप तुम, जग-जीव में तद्‌रूप तुम ।
अतुलित प्रभाव अनूप तुम, है नत नयन, तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।५९-६१।।

तुम सकल मानस राजती, बन स्मरण शक्ति विराजती ।
श्रद्धा सहित, हे सतमती! नत भाल है तुमको नमन ।।
देवी नमन । तुमको नमन । पुनि-पुनि नमन ।।६२-६४।।

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।६५-६७।।

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।६८-७०।।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।७१-७३ ।।

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।७४-७६।।

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ।।७७ ।।

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।७८-८०।।

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ।।८१ ।।

सब के हृदय द्युतिमान हो, अति दया रूप प्रधान हो।
तुम आर्द्र चित्त महान हो, सविनय करें तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।।६५-६७।।

जग-जीव के उर छा रही, सन्तोष रूप समा रही।
है नमन बारम्बार ही, देवी! सदा तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।।६८-७०।।

तुम मातृ रूपा अम्बिके, हे जग-जननि जगदम्बिके !
हो सर्व जग-अवलम्बिके, नित-नित करें तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।।७१-७३।।

सबके मनस् पर छा रही, बन भ्रान्ति-रूप समा रही।
जन-मन तुम्हीं भरमा रही, सादर करें तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।।७४-७६।।

तुम देह-इन्द्रिय की सकल, इक अधिष्ठात्री हो प्रबल।
हो व्याप्त जीवों में अखिल, हम सब करें तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।।७७।।

तुम सर्व जग जगदीश्वरी, चित्-शक्ति रूपा ईश्वरी।
जग-जीव सकल अधीश्वरी, नियमित करें तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।।७८-८०।।

सुरराज ने तव, ईश्वरी! बहु काल तक सेवा करी।
भव-दुःख-भय-आपद हरी, हे मंगला! तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।।८१।।

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥८२॥

ऋषिरुवाच ॥८३॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥८४॥

साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥८५॥

स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥८६॥

शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥८७॥

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥८८॥

ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम्।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥८९॥

ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥९०॥

दल-दैत्य से ताड़ित हुए, सुख-चैन से वञ्चित हुए।
माँ! तव चरण आश्रित हुए, हम सब करें तुमको नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।८२।।

बोले ऋषी-इस भाँति सुरगण, ने करी विनती जहाँ।
नृपराज! पार्वति गंग-जल में, स्नान को आई तहाँ।।८३-८४।।

उस भृकुटि मञ्जुल देवि ने, यों प्रश्न सुरगण से किया।
किस देवि की स्तुति कर रहे, किसने तुम्हें है दुख दिया।।
तब पार्वती-तन-कोश से, देवी शिवा प्रकटित भयी।
इस विध कहा उस देवि ने, जो थी अतुल शोभा मयी।।८५।।

ये शुम्भ-दल से तिरस्कृत, निश्शुम्भ से हारे सकल।
मेरा स्तवन ही कर रहे हैं, विपद के मारे सकल।।८६।।

माँ गौरि के तन-कोश से, जिस काल प्रकटी भगवती।
तब से कहा जग ने उन्हें, श्री कौशिकी श्री सतमती।।८७।।

उस कौशिकी के प्रकट से, तन श्याम गिरिजा ने लहा।
है कालिका के नाम से, वह ख्यात हिम गिरि पर महा।।८८।।

थे दास शुम्भ-निशुम्भ के, दो चण्ड मुण्ड महा बली।
उन दैत्य दोनों ने लखा, द्युति वदन मुख चन्द्रावली।।८९।।

जा शुम्भ से बोले-प्रभो! इक नारि मनहर रूप है।
हिम गिरि प्रकाशित कर रही, वह दिव्य कान्ति अनूप है।।९०।।

नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम्।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ।।९१।।

स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ।।९२।।

यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ।।९३।।

ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात्।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ।।९४।।

विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ।।९५।।

निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात्।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ।।९६।।

छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः ।।९७।।

मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ।।९८।।
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ।।९९।।

एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ।।१००।।

हे नाथ असुरेश्वर! सुनो, वह नारि-रूप ललाम है।
यह जान अपना लो उसे, वह कौन अद्भुत वाम है।।९१।।

वह नारियों में रत्न, चहुँदिश, अंग-दीप्ति-प्रभा घनी।
हे दैत्यपति! देखो उसे, हिम-शैल की शोभा बनी।।९२।।

बहु रत्न मणि गज वाजि जो, त्रयलोक की है सम्पदा।
वह आप के गृह में सुशोभित, हो रही अब सर्वदा।।९३।।

उच्चैश्रवा-से वाजि, ऐरावत सरिस गजराज हैं।
द्रुम पारिजात सुरेन्द्र से, सब लिये, दानवराज! हैं।।९४।।

यह यान अद्भुत हंस-युत, बहु रत्न-मणि-मण्डित किया।
है आज तव प्रांगण, जिसे विधि देव से तुम ने लिया।।९५।।

यह महापद्म निधी तुम्हीं, लाये धनद से छीन कर।
किञ्जल्किनी अम्लान-पुष्पा, जलधि ने दी माल्य-वर।।९६।।

वह छत्र काञ्चन-स्रावि भी, जो स्वर्ण-वर्षा नित करे।
सुर वरुण के था पास, अब घर आपका शोभित करे।।
रथ श्रेष्ठ वह, जो था कभी, अज ब्रह्म के अधिकार में।
है आज शोभा पा रहा, वह आपके दरबार में।।९७।।

यम की, प्रभो! उत्क्रान्तिदा, वह शक्ति भी तुमने लई।
औ वरुण-पाश-विशाल जीत, निशुम्भ ने तुम को दई।।
सरितेश ने सब रत्न, हैं दो वस्त्र पावक ने दिये।
जो जल नहीं सकते कभी, ऐसे अजर पावन किये।।९८-९९।।

हे दैत्य-कुल-भूषण! सकल जब, रत्न तव बस हो रहे।
यह रत्न-रूपा नारि कल्याणी, वृथा क्यों खो रहे।।१००।।

ऋषिरुवाच ।।१०१।।

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः ।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ।।१०२।।

इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम ।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ।।१०३।।

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने ।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ।।१०४।।

दूत उवाच ।।१०५।।

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ।।१०६।।

अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु ।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ।।१०७।।

मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः ।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ।।१०८।।

त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः ।
तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ।।१०९।।

क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः ।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ।।११०।।

यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ।।१११।।

कहते ऋषी-जब शुम्भ से, इस भाँति असुरों ने कहा।
तब शुम्भ, यों सुग्रीव से बोला, मुदित मन हो महा।।१०१-१०२।।

सुग्रीव! तू मेरे वचन, इस भाँति जा कहना वहाँ।
उद्योग करना इस तरह, वह मुग्ध हो आये यहाँ।।१०३।।

सुनकर वचन दैत्येन्द्र के, सुग्रीव हिम गिरि पर गया।
तहँ लखि सुशोभित देवि को, यों मृदु वचन बोलत भया।।१०४।।

कहने लगा, हे देवि! नृप इक शुम्भ दैत्य-अधीश हैं।
मैं दूत उनका हूँ, सुनो! त्रयलोक के वे ईश हैं।।१०५-१०६।।

आज्ञा सकल सुर वृन्द, उनकी मानते हैं सर्वदा।
सब देव किये परास्त हैं, नहिं टालता कोई कदा।।
सन्देश जो भेजा उन्होंने, आप ही के नाम पर।
मैं कह रहा हूँ शब्दशः, उसको सुनो तुम ध्यान धर।।१०७।।

त्रय लोक है मेरा सकल, सुर सुवश मेरे हैं यथा।
सब भाग क्रमशः यज्ञ के, हूँ भोगता मैं सर्वथा।।१०८।।

मेरे सभी अधिकार में, त्रयलोक के हैं रत्न-वर।
देवेन्द्र से गजरत्न, ऐरावत लिया है छीन कर।।१०९।।

था सिन्धु-मन्थन से हुआ, उत्पन्न जो उच्चैश्रवा।
वह अश्व रत्न सुरेन्द्र के, द्वारा मुझे अर्पित हुआ।।११०।।

गन्धर्व किन्नर नाग में, जो रत्न अति अनमोल हैं।
वे सब स्वबस मैंने किये, जो दिव्य कान्ति अतोल हैं।।१११।।

स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम्।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम्॥११२॥

मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः॥११३॥

परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात्।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज॥११४॥

ऋषिरुवाच॥११५॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत्॥११६॥

देव्युवाच॥११७॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम्।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः॥११८॥

किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम्।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा॥११९॥

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥१२०॥

तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु॥१२१॥

दूत उवाच॥१२२॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः॥१२३॥

सब नारियों में, सुन्दरी! तुम अतुल मञ्जुल रूप हो।
हम रत्न भोगी भूप हैं, तुम दिव्य रत्न अनूप हो।।११२।।

हे मृदुल मञ्जु कटाक्षिनी! तुम हृदय मम चिन्तन धरो।
अथवा निशुम्भ सुभ्रात ही से, प्रेम अपना तुम करो।।११३।।

करके वरण मुझको, अतुल ऐश्वर्य भोगोगी सदा।
यह जान कर निज बुद्धि से, मुझ को भजो तुम सर्वदा।।११४।।

ऋषिराज बोले-दूत का, सुनकर कथन यों भगवती।
बोली वचन गम्भीर, हँस कर जगद्धात्री सतमती।।११५-११६।।

यह सच कहा तूने, असुर! त्रय लोक स्वामी शुम्भ है।
बलवान उसकी ही तरह, रण-दक्ष दैत्य निशुम्भ है।।११७-११८।।

पै अल्पमति-वश प्रण किया, कैसे उसे मिथ्या करूँ।
मेरी प्रतिज्ञा, सुन असुर! जो सर्वदा मैं अनुसरूँ।।११९।।

जो युद्ध में जीते मुझे, बल-दर्प मम खण्डन करे।
वह मम समान बलिष्ट जन, संसार में मुझ को वरे।।१२०।।

ऐहि हेतु शुम्भ निशुम्भ आ, संग्राम अब मुझ से करें।
निज बाहु-बल से जीतकर, अविलम्ब फिर मुझ को वरें।।१२१।।

सुन दूत बोला-देवि! मत बोलो वचन यों दम्भ के।
त्रयलोक में, सम्मुख टिका है, कौन शुम्भ-निशुम्भ के।।१२२-१२३।।

अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका।।१२४।।

इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम्।।१२५।।

सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि।।१२६।।

देव्युवाच।।१२७।।

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान्।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा।।१२८।।

स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत्।।१२९।।

।।ॐ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये देव्या दूतसंवादो
नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

।।ॐ।।

सुर वृन्द ही नहिं लड़ सके, जब अन्य असुरों से यहाँ।
नारी अकेली तुम भला, रण में ठहर सकती कहाँ ।।१२४।।

शुम्भादि के जब सामने, सुर-इन्द्र-गण नहिं टिक सके।
तो क्या भला इक नारि केवल, युद्ध में कहिं टिक सके ।।१२५।।

तुम चलो शुम्भ-निशुम्भ ढिग, आदेश से मेरे अभी।
नतु केश गहि ले जाउँगा, तव जाएगा सम्मान भी ।।१२६।।

बोली शिवा, है सत्य, शुम्भ-निशुम्भ अति बलवान हैं।
पै मम प्रतिज्ञा के वचन भी, अटल सत्य महान हैं।।१२७-१२८।।

इस हेतु जाकर कह वहाँ, आदर सहित मम वचन को।
उस दैत्य राजा शुम्भ से, समुचित लगे, वह करन को ।।१२९।।

।।ॐ।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'देवी-दूत-संवाद' नामक पाँचवें अध्याय का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।।५।।

।।ॐ।।

षष्ठोऽध्याय:

धूम्रलोचन-वध

ध्यानम्

ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम्।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्द्धचूड़ां परां
सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये।।

'ॐ' ऋषिरुवाच।।१।।

इत्याकर्ण्य वचो देव्या: स दूतोऽमर्षपूरित:।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात्।।२।।

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् तत:।
सक्रोध: प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम्।।३।।

हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारित:।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम्।।४।।

तत्परित्राणद: कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपर:।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा।।५।।

ऋषिरुवाच।।६।।

तेनाज्ञप्तस्तत: शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचन:।
वृत: षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ।।७।।

छठा अध्याय

धूम्रलोचन-वध

ध्यान

ॐ नागराज आसन आसीना। फणि फण मणि माला छवि पीना।।
दीप्त देह रवि द्युति सम भासै। तीन नयन छवि अतुल प्रकाशै।।
कर जप माल्य कुम्भ शुचि राजैं। कमल कपाल अपर कर साजैं।।
चन्द्र मुकुट शुभ शीश विराजै। भैरव अंक सुशोभित छाजै।।
श्री पद्मावति माँ तोहि ध्यावौं। तव प्रसाद मन वाञ्छित पावौं।।

मुनिराज कहते, सुनो ब्रह्मन्! और आगे की कथा।
मेधा ऋषी नृप सुरथ और, समाधि से बोले यथा।।१।।

सुन वचन देवी के हुआ, नृप! दूत वह क्रोधित महा।
दनुराज से विस्तार युत, वृत्तान्त उस ने जा कहा।।२।।

सुन दैत्य शुम्भ सुरारि अति, क्रोधाग्नि में दहने लगा।
इक धूम्रलोचन दैत्य से, कर बंक दृग कहने लगा।।३।।

हे धूम्रलोचन! जा वहाँ, ले संग सैन्य अपार को।
गहि केश से विह्वल हुई, तू ला यहाँ उस नार को।।४।।

रक्षार्थ यदि कोई वहाँ, करता उसी का पक्ष हो।
रण में उसे भी मारना, गन्धर्व सुर हो, यक्ष हो।।५।।

ऋषि ने कहा-यों शुम्भ आयसु, दैत्य घोर अपार ले।
भर क्रोध में वह चल दिया, सँग सैन्य साठ हजार ले।।६-७।।

स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम्।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ।।८।।

न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ।।९।।

देव्युवाच ।।१०।।

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ।।११।।

ऋषिरुवाच ।।१२।।

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरा धूम्रलोचनः।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ।।१३।।

अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ।।१४।।

ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम्।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ।।१५।।

कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान्।
आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ।।१६।।

केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ।।१७।।

विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ।।१८।।

क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ।।१९।।

हिम शैल पर लखि देवि को, ऊँचे स्वरों में यों कहा।
तू शुम्भ और निशुम्भ के, ढिग चल अभी तज मद महा॥८॥

जो आज ही मम ईश ढिग, तू प्रीति से नहिं जाएगी।
गहि केश तव ले जाउँगा, फिर तू महा दुख पाएगी॥९॥

सुन वचन देवी ने कहा, भेजा असुर पति ने तुझे।
तव संग सैन्य विशाल है, बलवान भी लगता मुझे॥
ऐसी दशा में जो मुझे, बल पूर्वक ले जाए तू।
मैं क्या करूँ तेरा, भला निज नाथ वचन निभाए तू॥१०-११॥

बोले ऋषी सुन वचन, झपटा, धूम्रलोचन क्रोध कर।
तब अम्बिका ने भस्म उस को, कर दिया हुंकार भर॥१२-१३॥

फिर कुपित सैन्य विशाल, देवि-समक्ष रण में डट गई।
शर शक्ति परशू की परस्पर, मार से महि पट गई॥१४॥

तब भगवती का सिंह गर्जा, अति भयंकर नाद कर।
दल दैत्य पर ग्रीवा झटकि, धाया भयानक रूप धर॥१५॥

कुछ दैत्य कर-नख-वार से, कुछ हने हनु की मार से।
कुछ असुर आहत कर विदारे, ओष्ठ-दन्त-प्रहार से॥१६॥

कितनेक उदर विदारि नख से, मृत्यु के मुख में दिये।
कितनेक मारे करतलों से, शिर अलग धड़ से किये॥१७॥

बहु काटि के मस्तक भुजा, निज शिर झटकि महि मल दिया।
बहु दैत्य उदर विदीर्ण कर, उनके लहू को पी लिया॥१८॥

क्षण मात्र में तब सिंह ने, सब सैन्य दानव दुष्ट की।
निज विपुल-विक्रम-घोर से, अति सहज ही में नष्ट की॥१९॥

श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम्।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ।।२०।।

चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ।।२१।।

हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ।।२२।।

केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ।।२३।।

तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ।।२४।।

।।ॐ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शुम्भनिशुम्भसेनानीधूम्रलोचन वधो
नाम षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

।।ॐ।।

यों धूम्रलोचन दैत्य को, श्री देवि ने रण में हना।
सेना सँहारी सिंह ने, जब शुम्भ दानव ने सुना।।२०।।

आक्रोश में उसका लगा, थर-थर अधर तब काँपने।
बोला गरज कर चण्ड-मुण्ड-औ, सैन्य-दल के सामने।।२१।।

हे चण्ड! औ हे मुण्ड! तुम बहु सैन्य सँग जाओ वहाँ।
जाकर वहाँ उस नारि को, बस तुरत ले आओ यहाँ।।२२।।

गहि केश अथवा बाँध कर, तत्काल है लाना उसे।
संशय रहे तो शस्त्र-बल से, मार कर आना उसे।।२३।।

कर के प्रताड़ित नारि दुष्टा, सिंह का प्राणान्त कर।
लाना यथावत शीघ्र ही, उस अम्बिका को बाँध कर।।२४।।

।।ॐ।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के
अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'धूम्रलोचन-वध' नामक छठे
अध्याय का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।।६।।

।।ॐ।।

सप्तमोऽध्यायः

चण्ड और मुण्डका वध

ध्यानम्

ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं
न्यस्तैकाङ्घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम्।
कह्लाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां
मातङ्गीं शङ्खपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिभालाम्॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥१॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः॥२॥

ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम्।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने॥३॥

ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः॥४॥

ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा॥५॥

भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम्।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी॥६॥

सातवाँ अध्याय

चण्ड और मुण्ड का वध

ध्यान

ॐ ध्यावहुँ रत्न सिंहासन राजी। शुक कल पठित सुनत सुखसाजी।।
श्यामल शोभा अंग विराजै। एक चरण कमलोपरि साजै।।
चन्द्र शकल शुभ द्युति शिर सोहे। शुभ्र कमल माला मन मोहे।।
कञ्चुकि बद्ध अरुण पट अंगा। कर झनकावति वीण तंरगा।।
शंख पात्र कर मँह छवि पावै। मधुमद मधुर नयन सरसावै।।
भाल मध्य बिन्दी छवि खानी। अनुपम शोभित मातु भवानी।।
मातङ्गी तोहि पुनि-पुनि ध्याऔं। तव प्रसाद तें सब सिधि पाऔं।।

मार्कण्डेय वेद विज्ञानी। मातु चरित शुभ कहेउ बखानी।।
मेधा ऋषि अस वचन उचारे। सुरथ समाधि सुनत हिय धारे।।१।।

वे चण्ड-मुण्ड महा बली, नृप शुम्भ आयसु शीश धर।
राजन्! चमू चतुरंग ले, पहुँचे तुरत हिम शैल पर।।२।।

जा कर लखा, श्री देवि, इक स्वर्णाभ हिमगिरि-शृंग पर।
निश्शंक सिंहासीन हैं, मृदु हास मञ्जुल धर अधर।।३।।

कुछ दैत्य धनु को खींचते, कुछ खड्ग ले निज हाथ में।
पहुँचे निकट लखि देवि को, ले प्रबल दानव साथ में।।४।।

रिपु देख कर श्री अम्बिका, तब क्रोध में अति भर गयी।
तइ क्रोध कारण छवि वदन की, निपट काली पड़ गयी।।५।।

तब वक्र भृकुटि-ललाट-पट से, तेज पुञ्ज प्रभा-मयी।
असि पाश कर धर कालिका, विकराल-मुखी प्रकट भयी।।६।।

विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा॥७॥

अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा॥८॥

सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम्॥९॥

पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान्।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्॥१०॥

तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम्॥११॥

एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम्।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत्॥१२॥

तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि॥१३॥

बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम्।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा॥१४॥

असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा॥१५॥

क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम्।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम्॥१६॥

खटवांग अद्भुत कर लिये, नर-मुण्ड-माला धारिणी।
तन विमल बाघम्बर धरे, कृश-गात अति भय कारिणी॥७॥

मुख विकट अरुण निमग्न नयना, ललन जीभ डरावनी।
निज अति भयंकर गर्जना से, सकल दिशा गुँजावनी॥८॥

दलने लगी दल दैत्य के, मुखिया गणों को शस्त्र धर।
करने लगी भक्षण भवानी, धाय द्रुत रिपु सैन्य पर॥९॥

बहु पार्श्व रक्षक अंकुशी, घण्टा सहित गज डार को।
निज हस्त से धरती वदन में, असुर सैन्य अपार को॥१०॥

एहि भाँति योद्धा अश्व-रथ, सह-सारथी फैंकन लगी।
आनन विकट निज धरि, भयावह रदन से खैंचन लगी॥११॥

कोउ दैत्य मारा केश गहि, कोउ दला पाँव-प्रहार कर।
कोउ कण्ठ चाँपि हना असुर, कोउ वक्ष टक्कर मार कर॥१२॥

रिपु छोड़ते शस्त्रास्त्र जो, थी गह रही निज वदन से।
करि कोप उनको पीसती थी, वह भयानक रदन से॥१३॥

कितने हि बली दुरात्म दनु-दल, रौंद काली ने धरे।
कितने हि मार भगा दिए, कुछ अग्र दाँतों से चरे॥१४॥

केतक हने खटवांग से, केतक हने तलवार से।
कितने हि दानव-गण सँहारे, दन्त-अग्र-प्रहार से॥१५॥

जब इस तरह सेना सकल, उन दानवों की कट मरी।
तब चण्ड धाया वेग से, लखि देवि कालि भयंकरी॥१६॥

शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः॥१७॥

तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम्।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम्॥१८॥

ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी।
कालीकरालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला॥१९॥

उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत्॥२०॥

अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा॥२१॥

हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम्॥२२॥

शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम्॥२३॥

मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि॥२४॥

ऋषिरुवाच॥२५॥

फिर उस महासुर चण्ड ने, तन देवि का शर-व्यूह से।
औ मुण्ड ने भी ढक दिया, द्रुत सहस चक्र-समूह से ।।१७।।

बहु चक्र थे इस भाँति वे, देवी वदन में जा रहे।
ज्यों भानु बहु द्युतिमय, जलद के उदर बीच समा रहे ।।१८।।

कर अट्टहास कराल क्रोधित, कालिका हँसने लगी।
दुर्दर्श दीर्घ सुदन्त-प्रभ से, उज्ज्वला दिसने लगी ।।१९।।

अति वेग धायी चण्डिका, मुख शब्द 'हं' उच्चार कर।
गहि केश मस्तक चण्ड का, काटा बृहत् तलवार धर ।।२०।।

यों चण्ड मरते देख रण में, मुण्ड धाया शस्त्र धर।
तब कालि ने उस को, धराशायी किया असि वार कर ।।२१।।

यों देखकर रण में मरे, दोउ चण्ड-मुण्ड महा बली।
जो थी असुर सेना बची, भय-वश चहूँदिश भज चली ।।२२।।

तब कालिका ने चण्ड के, औ मुण्ड के मस्तक गहे।
अतिहास कर यों भगवती सम्मुख, वचन जाकर कहे ।।२३।।

बोली महा दोउ पशुन के, शिर आप को ये भेंट हैं।
अब दैत्य शुम्भ निशुम्भ दोनों, आप के आखेट हैं ।।२४।।

मेधा ऋषी श्रद्धा सहित, माँ का चरित शुभ गा रहे।
सुन वैश्य औ राजा सुरथ, मन में अमित सुख पा रहे ।।२५।।

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥ २६॥

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॥ २७॥

॥ ॐ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये चण्डमुण्डवधो नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
॥ ॐ ॥

यों चण्ड-मुण्ड निशाचरों के, देख मस्तक सामने।
रण चण्डिका ने कालिका से, कहे वचन सुहावने।।२६।।

मम पास तुम, हे देवि! लायी, चण्ड-मुण्ड पिशाच को।
इस हेतु चामुण्डा जगत में, नाम तव विख्यात हो।।२७।।

।।ॐ।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के
अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'चण्ड-मुण्ड-वध' नामक सातवें
अध्याय का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।।७।।

।।ॐ।।

अष्टमोऽध्यायः

रक्तबीज-वध

ध्यानम्

ॐ अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं
धृतपाशाङ्कुशबाणचापहस्ताम्।
अणिमादिभिरावृतां मयूखै-
रहमित्येव विभावये भवानीम्॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥१॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः॥२॥

ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान्।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह॥३॥

अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः॥४॥

कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया॥५॥

कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम॥६॥

इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः॥७॥

आठवाँ अध्याय

रक्तबीज वध

ध्यान

ॐ अरुणोपम आभा छवि छावे। दिव्य दृगनि करुणा लहरावे ।।
अंकुश पाश बाण धनु हाथा। सिद्धि प्रज्योति समावृत माथा ।।
भजौं तोहि जगदम्ब भवानी। जननी विश्व सुमंगल दानी ।।

बोले मुनीश्वर, विप्रवर! ऋषि ने वचन शुभ यों कहे।
सुन कर जिन्हें भूपति सुरथ, औ वैश्य ने गुन-गन गहे ।। १ ।।

दोउ दैत्य चण्ड-औ मुण्ड, राजन्! युद्ध में मारे गये।
औ विपुल दानव सैन्य दल भी, सकल संहारे गये ।। २ ।।

यह सुन प्रतापी दैत्य अधिपति, शुम्भ गर्जा क्रोध कर।
तैयार सारे सैन्य-पति हों, बस अभी रण-कूच पर ।। ३ ।।

अब तुरत सेना-सह उदायुध, जायँ वे छ्यासी असुर।
औ सैन्य अपनी ले चलें, सब कम्बु चौरासी असुर ।। ४ ।।

पुनि कोटि-वीर्यक अर्द्ध-शत, सौ धौम्र-कुल सेनापती।
आदेश है मम, सैन्य सँग, रण में सिधारें द्रुत गती ।। ५ ।।

औ कालकेयी मौर्य दौहृद, कालकी वंशज सुभट।
वे सब चलें शस्त्रास्त्र धर, जो रण-विशारद हैं विकट ।। ६ ।।

एहि भाँति आयसु घोर दे, पुनि सैन्य अगणित साथ ले।
शासक भयंकर शुम्भ निकला, विविध आयुध हाथ ले ।। ७ ।।

आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम्।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम्॥ ८॥

ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत्॥ ९॥

धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना॥ १०॥

तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम्।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः॥ ११॥

एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम्।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः॥ १२॥

ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः॥ १३॥

यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ॥ १४॥

हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते॥ १५॥

माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा॥ १६॥

कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी॥ १७॥

तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ॥ १८॥

श्री चण्डिका ने देख कर, उस दैत्य-सैन्य अथोक को।
निज़ धनुष की टंकार से, कम्पित किया तिहुँ लोक को ॥ ८ ॥

नृपराज! गर्जा सिंह भी, अतिशब्द नभ पूरित किया।
घण्टा सु-ध्वनि से देवि ने, वरनाद चहुँदिश भर दिया ॥ ९ ॥

धनु-सिंह-घण्टा-नाद से, सम्पूर्ण दिशि गुञ्जन बढ़ा।
तब देवि काली ने लिया, विकराल निज आनन बढ़ा ॥ १० ॥

रिपु सैन्य धायी कोप कर, सुन शब्द गुञ्जन घोर को।
कालिका-चण्डी-सिंह के, घेरा दिया चहुँ ओर को ॥ ११ ॥

इस बीच, भूपति! जगत हित, औ देव-रिपु-दल-नाश को।
आई विपुल बल शक्तियाँ, अति दिव्य रूपा प्रकट हो ॥ १२ ॥

अज विष्णु शिव औ इन्द्र कार्तिक, देह से उद्धृत भयी।
वे रूप उनका ही धरे, श्री चण्डिका सम्मुख गयी ॥ १३ ॥

जिस देव का जो-जो वसन-वाहन, अलंकृत रूप था।
उस शक्ति का रण में वही, उस काल रूप-स्वरूप था ॥ १४ ॥

अज शक्ति तहँ आई, कमण्डलु अक्षमाला कर लहै।
कल-हंस शोभित यान चढ़, जेहि जगत ब्रह्माणी कहै ॥ १५ ॥

औ वृषभ बैठ, त्रिशूल कर अहि-वलय, चन्द्र ललाट धर।
शिव-शक्ति नाम महेश्वरी, आई तुरत तहँ मोद भर ॥ १६ ॥

श्री स्वामि कार्त्तिक रूप की, कौमार्य शक्ति विशालिनी।
आई मयूरारूढ़ हो, कुल-दैत्य-खल-दल-घालिनी ॥ १७ ॥

तहँ तुरत गरुड़ासीन हो, धनु शंख चक्र गदा लिये।
श्री विष्णु शक्ति सु-खड्ग धर, आई प्रकाशित दिशि किये ॥ १८ ॥

यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम्॥१९॥

नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः॥२०॥

वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा॥२१॥

ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम्॥२२॥

ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी॥२३॥

सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता।
दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः॥२४॥

ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः॥२५॥

त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ॥२६॥

बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः॥२७॥

यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम्।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता॥२८॥

जो ज्ञात श्रीहरि शक्ति, यज्ञ-वराह-रूपा अनुपमा।
वह यज्ञ-वाराही सुसज्जित, रूप धर पहुँची तहाँ।।१९।।

फिर नारसिंही शक्ति आई, नृसिंह-सम तन धार कर।
निज ग्रीव-केश-झकोर से, तारे छिटकती व्योम पर।।२०।।

दृग सहस शोभित इन्द्र शक्ति, सु-वज्र कर धारण किये।
गजराज चढ़ आई तहाँ, कुल-दैत्य-क्षय इच्छा लिये।।२१।।

शिव ने घिरे सब शक्तियों से, चण्डिका से यों कहा।
तुम प्रीति मेरी-हित हनो, कुल-दैत्य को कर रण महा।।२२।।

तब देवि-तन से उग्र भीषण, शक्ति प्रकटी चण्डिका।
निज कण्ठ जो दारुण भयंकर, शत शिवा-स्वर-नादिका।।२३।।

अपराजिता वह चण्डिका, शिव-शम्भु से बोली वचन।
सन्देश शुम्भ-निशुम्भ से, भगवन्! कहें मम दूत बन।।२४।।

उन दैत्य शुम्भ-निशुम्भ, दोनों दम्भियों से यों कहें।
औ अन्य से भी, युद्ध-तत्पर असुर-गण तहँ जो रहें।।२५।।

असुरो! भला यदि चाहते, लौटो तुरत पाताल को।
सब यज्ञ-हवि सुरगण लहैं, त्रैलोक दो सुरपाल को।।२६।।

बल-दर्प-वश नहिं मानते, है युद्ध की इच्छा घनी।
तो फिर तुम्हारे मांस ही से, तृप्त होंगी योगिनी।।२७।।

शिव को बनाया दूत जब, उस दैत्य-युद्ध अपार में।
तब से हि उसका नाम, शिवदूती हुआ संसार में।।२८।।

तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः ।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥ २९ ॥

ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥ ३० ॥

सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥ ३१ ॥

तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् ।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ॥ ३२ ॥

कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः ।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ॥ ३३ ॥

माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥ ३४ ॥

ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ ३५ ॥

तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥ ३६ ॥

नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान् ।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥ ३७ ॥

चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥ ३८ ॥

शिव मुख वचन सुन देवि के, सब दैत्यगण बल-मद भरे।
पहुँचे निकट कात्यायनी के, घोर आयुध कर धरे॥२९॥

कर क्रोध वे छल-बल-निपुण, शर शक्ति बरसाने लगे।
औ ऋष्टि आयुध आदि से, रस-युद्ध सरसाने लगे॥३०॥

श्री देवि ने भी खेल ही में, कर धनुष-टंकार तब।
शर मार काटे बाण-परशू, शक्ति-शूल-प्रहार सब॥३१॥

हो अग्र देवी के चली, निज शूल कर धर कालिका।
बस चीरती औ कूटती, खटवांग से रिपु-घालिका॥३२॥

ब्रह्माणि ने भी दौड़ कर, छिड़का कमण्डलु जल जहाँ।
रिपु-सैन्य का ओजस-पराक्रम, क्षीण कर डाला तहाँ॥३३॥

माहेश्वरी ने शूल से, औ वैष्णवी ने चक्र से।
कौमारि ने निज शक्ति-सह, रिपु हने दृष्टी-वक्र से॥३४॥

इन्द्राणि-वज्र-प्रहार से, जब दैत्य-तन फट-फट परे।
तन रक्त फूटी धार, हत हो सैकड़ों महि पर गिरे॥३५॥

वाराहि ने निज तुण्ड से, कितनेक चक्र-प्रहार कर।
कुछ दशन-अग्र-प्रभाग से, रिपु हने वक्ष विदार कर॥३६॥

औ नारसिंही नखन से, तन-दैत्य-दल फारन लगी।
भक्षण लगी करने असुर, अति गर्ज कर मारन लगी॥३७॥

शिवदूति का सुन अट्टहास-प्रचण्ड, भय-वश दैत्य-गण।
जहँ-तहँ गिरे, वह दौड़कर, भक्षण लगी उनको करन॥३८॥

इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान्।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥३९॥

पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान्।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥४०॥

रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥४१॥

युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥४२॥

कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम्।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥४३॥

यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥४४॥

ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ॥४५॥

पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥४६॥

वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४७॥

वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः।
सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥४८॥

एहि भाँति देखा मातृ-गण को, विविध-विध संहारते।
लखि महा दैत्यों का मरण, दल-सैन्य भागे हारते॥३९॥

निज सैन्य देखी, मार से आहत, समर तज भज चली।
गहि शस्त्र धाया क्रुद्ध हो, तब रक्तबीज महाबली॥४०॥

उस असुर तन से रक्त की, जो बिन्दु पृथ्वी पर परे।
बनकर उसी जैसा असुर वह, प्रगटता नव तन धरे॥४१॥

कर गहि गदा उस दैत्य ने, जा युद्ध ऐन्द्री से किया।
तब इन्द्र शक्ती ने असुर पर, वज्र-वार चला दिया॥४२॥

जितने लहू के बिन्दु, वज्राघात लग तन से झरे।
उतने हि दैत्य महा बली, प्रगटे मही पर तन धरे॥४३॥

उपजे लहू से जो दनुज, वे रक्त-बीज समान थे।
अति वीर्यवान पराक्रमी, रण में अतुल बलवान थे॥४४॥

वे रक्त से उपजे पुरुष भी, युद्ध में आ भिड़ रहे।
शस्त्रास्त्र उग्र प्रहार कर, थे मातृ-गण से लड़ रहे॥४५॥

जब पुनः वज्र-प्रहार से, आहत हुआ शिर दैत्य का।
तब रक्त की धारा बही, प्रगटे सहस दानव महा॥४६॥

श्री वैष्णवी ने दैत्य-पति को, चक्र के निज वार से।
इन्द्राणि ने भी क्षत किया, उसको गदा की मार से॥४७॥

जब वैष्णवी के चक्र से, कट रुधिर महि बहने लगा।
तब दैत्य दल उत्पन्न हो, सब जगत को दहने लगा॥४८॥

शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम्॥४९॥

स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक्।
मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः॥५०॥

तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः॥५१॥

तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत्।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम्॥५२॥

तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु॥५३॥

मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान्।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना॥५४॥

भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान्।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति॥५५॥

भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम्॥५६॥

मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम्।
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम्॥५७॥

कौमारि ने निज शक्ति से, वाराहि ने असि वार से।
आहत किया माहेश्वरी ने, दनुज शूल-प्रहार से।।४९।।

वह रक्त बीज महाबली, करि कोप धाया शस्त्र धर।
सब मातृ-गण से रण किया, क्रमशः गदा का वार कर।।५०।।

जेतक रुधिर के बिन्दु महि पर, दैत्य के झरने लगे।
उतने हि दानव हो प्रकट, दारुण समर करने लगे।।५१।।

उस दैत्य दल की सृष्टि से, भूखण्ड सारे भर गये।
यह देख मन में हो विकल, सब देवगण भी डर गये।।५२।।

भयभीत सुर गण देख कर, बोली भवानी चण्डिका।
विस्तार निज मुख का करो, अब शीघ्र देवी कालिका।।५३।।

उत्पन्न हों लहु-बिन्दु जो, कट शस्त्र के मम वार से।
नहिं एक भी महि पर गिरे, उन को गहो मुख-सार से।।५४।।

ये रक्त से उपजे दनुज, भक्षण करो रण में विचर।
वह नष्ट होगा आप यों, जब रक्त होगा क्षीण-तर।।५५।।

भक्षण करोगी देवि जब, तुम दैत्य-वृन्द कराल को।
पैदा न होंगे फिर नये, चर लो इन्हें तत्काल को।।
इस भाँति कह कर कालिका से, चण्डिका ने शूल धर।
उस रक्त-बीज महा असुर के, घात कीन्हा वक्ष पर।।५६।।

तब कालि ने निज घोर मुख से, रक्त उसका पी लिया।
तहँ दैत्य ने करि कोप, गदा-प्रहार चण्डी पर किया।।५७।।

न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम्॥५८॥

यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः॥५९॥

तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम्।
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः॥६०॥

जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम्।
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः॥६१॥

नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः।
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप॥६२॥
तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः॥६३॥

॥ॐ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो
नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥
॥ॐ॥

पै देवि को व्यापी न किञ्चित, वेदना गद-वार से।
आहत असुर-तन से हुआ, अति श्राव-शोणित-धार से ॥५८॥

ज्यों ही गिरा चामुण्डिका ने, रक्त वह निज मुख गहा।
लहु-बिन्दुओं से और भी, प्रगटे असुर मुख में महा ॥५९॥

खा गयी चामुण्डा उन्हें, पीया असुर-शोणित सभी।
तब देवि वज्र त्रिशूल धर, असि-बाण-ऋष्टि-समूह भी ॥ ६० ॥

धायी, सँहारा, रक्त जिसका पूर्व काली ने पिया।
भू-पर गिरा तन दैत्य का, शस्त्रास्त्र से जो हत किया ॥६१॥

श्री देवि के हाथों मरा, नीरक्त दानव-पति हुआ।
यों रक्त-बीज महा असुर-प्राणान्त, हे भूपति! हुआ ॥
तब दैत्य-वध से, नृपति वर ! सब देव गण हर्षित हुए।
औ मातृगण के थिरकते, मदमत्त हिय सरसित हुए ॥६२-६३॥

॥ ॐ ॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के
अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'रक्तबीज-वध' नामक आठवें
अध्याय का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥
॥ ॐ ॥

नवमोऽध्यायः

निशुम्भ-वध

ध्यानम्

ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां
पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्द्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि॥

'ॐ' राजोवाच॥१॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम्॥२॥

भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः॥३॥

ऋषिरुवाच॥४॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे॥५॥

हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन्।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया॥६॥

तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः॥७॥

नवाँ अध्याय

निशुम्भ-वध

ध्यान

ॐ बन्धुक पुष्प स्वर्ण-प्रभ रूपा। अक्षमाल वर भुजनि अनूपा।।
पाशांकुश छवि शोभित भद्रा। वरदायिनि कर राजत मुद्रा।।
इन्दु खण्ड शुभ शीश सुहावै। लोचन तीन छटा मन भावै।।
गहि हौं शरण शिवा शिव जोरी। सकल सुमंगल दायिनि भोरी।।

मुनि मार्कण्डेय कह रहे, ब्रह्मन्! सुनो आगे कथा।
मेधा ऋषी से नृप सुरथ ने, जोरि कर पूछा यथा।।१।।

भगवन्! कहा सब आपने, देवी महात्म्य पवित्र को।
उस रक्त-बीज सुरारि-वध से, जुड़े देवि चरित्र को।।२।।

अब रक्त-बीज निपात के, उपरान्त भी बतलाइये।
उस क्रुद्ध शुम्भ-निशुम्भ ने, क्या कर्म, हे भगवन्! किये।।३।।

बोले ऋषी, जब दैत्य गण सह, रक्त-बीज वधा गया।
नृपराज! शुम्भ-निशुम्भ उर, तब क्रोध दारुण छा गया।।४-५।।

निज विपुल सैन्य विनाश लखि, दानव निशुम्भ अधीर हो।
ले प्रमुख सेना संग धाया, अम्बिका से युद्ध को।।६।।

चहुँ ओर घेरे दैत्य गण, पीसन लगे निज रदन को।
आये कुपित रण भूमि में, श्री भगवती के वधन को।।७।।

आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥८॥

ततो युद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयोः।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥९॥

चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥१०॥

निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम्।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥११॥

ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम्।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१२॥

छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥१३॥

कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः।
आयातं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥१४॥

आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१५॥

ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम्।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥१६॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥१७॥

चतुरंगिनी सेना लिये, तब शुम्भ अति हिय क्रोध भर।
श्री चण्डिका वध हेतु आया, मातृ-गण से युद्ध कर।। ८।।

दोउ दैत्य, देवी में छिड़ा रण, अति भयंकर अति अगम।
बर्षन लगे चहुँ ओर शर, नभ से सघन जलधार-सम।। ९।।

शर-पुञ्ज से तब चण्डिका ने, विफल अरि-शायक किये।
औ शस्त्र-घोर-प्रहार से, ताड़ित असुर-नायक किये।। १०।।

धरि घोर खड्ग विशाल कर, धाया निशुम्भ सुरारि वर।
जा सिंह के दी भाल ऊपर, तीक्ष्ण असि की धार धर।। ११।।

लखि देवि ने छोड़ा तुरन्त, क्षुरप्र अस्त्र विशाल को।
खण्डित करी तलवार, सँग ही अष्ट-चन्द्रक ढाल को।। १२।।

इस पर कुपित हो दैत्य ने, अति शक्ति भीषण छोड़ दी।
जिस को भवानी ने तुरत, निज चक्र ही से तोड़ दी।। १३।।

क्रोधाग्नि-दग्ध निशुम्भ ने, निज शूल छोड़ी देवि पर।
वह चूर्ण कर दी भगवती ने, प्रबल मुष्टि प्रहार कर।। १४।।

तब गहि गदा छोड़ी असुर ने, चण्डिका पर अति घुमा।
देवी-त्रिशूल-प्रहार से, वह कट हुई पल में धुआँ।। १५।।

फिर हाथ में फरसा लिये, धाया असुर दारुण प्रबल।
श्री चण्डिका-शर-पुञ्ज से, आहत गिरा रण भूमि खल।। १६।।

वह दैत्य घोर निशुम्भ जब, लग बाण मूर्छित हो गया।
यह देख, क्रोधित शुम्भ उद्यत, अम्बिका-वध को भया।। १७।।

स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः॥ १८॥

तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत्।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम्॥ १९॥

पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना॥ २०॥

ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः।
पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश॥ २१॥

ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत्।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः॥ २२॥

अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ॥ २३॥

दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः॥ २४॥

शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया॥ २५॥

सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम्।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते॥ २६॥

धर अष्ट-भुज, कर शस्त्र ले, रथ बैठ अति मद में भरा।
नभ मेघ-मण्डल व्याप्त कर, रण भूमि में दृष्टी परा॥१८॥

लखि शुम्भ आता, देवि ने निज शंख उद्घोषित किया।
टंकार धनु-प्रत्यञ्च कर, घन शब्द नभ में भर दिया॥ १९॥

घण्टा-निनाद विशाल जो, रिपु-सैन्य-तेज विनाश कर।
सम्पूर्ण दिशि में भर दिया, श्री देवि ने वह नाद-वर॥ २०॥

तब सिंह गर्जा कोप में, कर शब्द गज-मद-हार को।
गुञ्जित किया भूलोक, दिशि-दश व्योम के विस्तार को॥ २१॥

फिर कालिका ने व्योम चढ़, आ हाथ पटके भूमि पर।
उस शब्द ने वे शब्द सब, काटे सकल नभ पूर कर॥ २२॥

शिव-दूति ने अति अट्टहास किया, गगन गुञ्जित हुआ।
तब दैत्य-गण थर्रा उठे, औ शुम्भ-उर-क्रोधित हुआ॥ २३॥

श्री देवि बोली शुम्भ से, रे ठहर जा तू खल महा!
नभ यान चढ़ सुरवृन्द ने, हो मुदित जय जय जय कहा॥ २४॥

श्री पर चलाई शुम्भ ने आ, प्रज्ज्वलित इक शक्ति-वर।
वह निज महोल्का शक्ति से, दी अम्बिका ने खण्ड कर॥ २५॥

तब शुम्भ गर्जा सिंह-सम, अतुलित भयंकर नाद कर।
वह नाद पूरित हो गया, तिहुँ लोक में चहुँ ओर भर॥
उस शब्द के प्रतिशब्द ने, जब सञ्चरण, राजन्! किया।
कर वज्र सम ध्वनि चण्ड, शब्द-समूह सारा ढक लिया॥ २६॥

शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान्।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः।।२७।।

ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम्।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह।।२८।।

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा।।२९।।

पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम्।।३०।।

ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान्।।३१।।

ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम्।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः।।३२।।

तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे।।३३।।

शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम्।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका।।३४।।

भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन्।।३५।।

तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि।।३६।।

शर शुम्भ के श्री देवि ने, औ देवि-शायक शुम्भ ने।
शत-सहस निज-निज उग्र, बाणों से किये भञ्जित घने ॥२७॥

फिर चण्डिका ने शुम्भ के, उर शूल मारा क्रोध कर।
आघात से मूर्छित हुआ, वह गिर पड़ा रण भूमि पर॥२८॥

तब दैत्य घोर निशुम्भ जागा, मूर्छना से चेत कर।
श्री देवि-काली-सिंह को, आहत किया धनु-बाण धर॥२९॥

फिर दस सहस भुज धार, दानव-राज ने कौतुक किया।
बहु सतत चक्र-प्रहार कर, तन चण्डिका का ढक दिया॥३०॥

दुर्गार्ति-नाशिनि देवि ने, धर त्वरित बाण-समूह को।
खण्डित किया अति कुपित हो, शर-चक्र-आयुध-व्यूह को॥३१॥

यह देख गहि कर में गदा, धाया निशुम्भ महाबली।
औ दैत्य सेना हो सहायक, संग में उस के चली॥३२॥

काटी गदा श्री चण्डिका ने, तीक्ष्ण निज तलवार से।
तब दैत्य दारुण शूल इक, दौड़ा तुरत कर धार के॥३३॥

यों देख आते दैत्य को, सज्जित भयंकर शूल से।
उर घात उसके चण्डिका ने, किया घोर त्रिशूल से॥३४॥

उस दैत्य का उर फट गया, अति रुधिर धारा बह चली।
तब 'ठहर जा!' कहता हुआ, उर-दैत्य प्रगटा इक बली॥३५॥

इतना सुना जब देवि ने, इक अट्टहास गुँजा दिया।
तलवार का कर वार, उसका शिर अलग धड़ से किया॥
शिर हीन हो धड़ दैत्य का, रण भूमि थल पर जा परा।
एहिविध निशुम्भ असुरपती, श्री देवि भुज-बल से मरा॥३६॥

ततः सिंहश्चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान्॥३७॥

कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः॥३८॥

माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि॥३९॥

खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे॥४०॥

केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात्।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः॥४१॥

॥ ॐ ॥

इति मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम
नवमोऽध्यायः ॥९॥
॥ ॐ ॥

शिर होठ उसके निज रदन से, सिंह ने खाये कुचल।
काली तथा शिवदूति ने, भक्षण किये बहु दैत्य-दल ॥ ३७ ॥

निज शक्ति से कौमारि, दारुण-दैत्य-दल दलने लगी।
ब्रह्माणि मन्त्रित जल छिड़क, रिपु-बल निबल करने लगी ॥ ३८ ॥

माहेश्वरी के शूल से, बहु दैत्य गण कटने लगे।
वाराहि तुण्ड-प्रघात से, अरि-सैन्य-तन फटने लगे ॥ ३९ ॥

गिरने लगे कट-कट, दनुज-दल वैष्णवी के चक्र से।
केतक मरे इन्द्राणि के, हाथों चले वर वज्र से ॥ ४० ॥

कुछ नष्ट रण में हुए दानव, कुछ भगे बिन रण करे।
कुछ कालिका, शिव-दूति ने, औ सिंह ने भक्षण करे ॥ ४१ ॥

॥ ॐ ॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'निशुम्भ-वध' नामक नवें अध्याय का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

॥ ॐ ॥

दशमोऽध्यायः
शुम्भ-वध
ध्यानम्

ॐ उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्नि-
नेत्रां धनुश्शरयुताङ्कुशपाशशूलम्।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां
कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम्॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥१॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम्।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः॥२॥

बलावलेपाद्दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी॥३॥

देव्युवाच॥४॥
एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः॥५॥

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका॥६॥

दशवाँ अध्याय
शुम्भ-वध
ध्यान

ॐ उत्तापित सुवर्ण-प्रभ गाता। रवि शशि वह्नि नयन जलजाता।।
कर कञ्जनि शोभित छवि मूला। धनु शर अंकुश पाश त्रिशूला।।
चन्द्रकला ललाट पट राजै। शिव अरु शक्ति मिलन सुख साजै।।
माँ कामेश्वरि निज उर ध्याऔं। पुनि पुनि पाद पद्म शिर नाऔं।।

मुनिराज बोले, विप्रवर! वृत्तान्त यह सत्-सार है।
मेधा ऋषी ने सुरथ को, जो कहा इसी प्रकार है।। १।।

नरपति! अनुज निज प्राण सम, औ सैन्य को हत जान कर।
हो कुपित बोला शुम्भ यों, प्रतिशोध-युत अभिमान भर।। २।।

यों गर्व-बल, तू दुष्ट दुर्गे! क्या वृथा उर में भरे।
मैं जानता हूँ अन्य का, बल आसरा बस तू धरे।। ३।।

तब देवि बोली शुम्भ से, ऐ मूढ़! सुन, बतला रही।
अतिरिक्त नहिं मम अन्य, मैं ही एक सब जग छा रही।।
ये विविध आयुध रूप धारे, दृष्टि में जो आ रहीं।
मेरी समस्त विभूतियाँ हैं मम शरीर समा रहीं।। ४-५।।

यों भगवती के सुन वचन, सब शक्तियाँ मुद मय हुईं।
ब्रह्माणि आदि समस्त मिल, श्री अम्बिका में लय हुईं।।
जब शक्ति सब लय हो गई, तब रह गई बस अम्बिका।
वह सब जगत की ईश्वरी, सर्वात्मिका जगदम्बिका।। ६।।

देव्युवाच ॥ ७ ॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥ ८ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥ १० ॥

शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः।
तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥ ११ ॥

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ १२ ॥

मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥ १३ ॥

ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः।
सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥ १४ ॥

छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥ १५ ॥

ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत्।
अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥ १६ ॥

तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥ १७ ॥

हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥ १८ ॥

तब देवि बोली, मैं यहाँ उद्यत महा संग्राम हूँ।
ऐश्वर्य-शक्ति-सुयोग से निज, विविध रूप ललाम हूँ।।
सब शक्तियों के रूप निज में, कर समाहित हूँ खड़ी।
तुम भी डटो रणभूमि में, मैं युद्ध के हित हूँ खड़ी।।७-८।।

बोले ऋषी-जब शुम्भ से, इस भाँति दुर्गा ने कहा।
सुर-दैत्य-गण के देखते, रण छिड़ गया दारुण महा।। ९-१०।।

शर अस्त्र-शस्त्र समूह फिर, चलने लगे दोउ ओर से।
सब लोक हत-प्रभ हो गये, उस रण भयंकर घोर से।। ११।।

जो अम्बिका ने सैकड़ों, दिव्यास्त्र छोड़े शुम्भ पर।
वे सब असुर-पति शुम्भ ने, काटे निवारक अस्त्र धर।। १२।।

दिव्यास्त्र दानव ने इसी-विध, जो चलाये देवि पर।
वे देवि ने भञ्जित किये, अति सहज में हुंकार भर।। १३।।

तब दैत्य ने शर जाल फैंके, देवि का तन ढक दिया।
श्री देवि ने हो क्रुद्ध शर से, खण्ड धनु उसका किया।। १४।।

धनु खण्ड लख कर दैत्य ने, नव शक्ति को धारण किया।
पै भगवती ने चक्र से, उसका तुरत खण्डन किया।। १५।।

क्रोधित असुर पति खड्ग ले, शत चन्द्र ढाल विशाल को।
सम्मुख भवानी के चला, धर रूप घोर कराल को।। १६।।

यह देख देवी ने तुरत, उस खड्ग के टुकड़े किये।
काटी चमकती ढाल औ, शर जाल चहुँ दिश छा दिये।। १७।।

टूटा धनुष, फिर सारथी घोड़ों सहित मारा गया।
तब शुम्भ मुद्गर घोर ले, देवी हनन हित आ गया।। १८।।

चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान्॥ १९॥

स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत्॥ २०॥

तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः॥ २१॥

उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका॥ २२॥

नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम्।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम्॥ २३॥

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले॥ २४॥

स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया॥ २५॥

तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम्।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि॥ २६॥

स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः।
चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम्॥ २७॥

ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः॥ २८॥

जब भगवती ने बाण से, वह नष्ट मुद्गर कर दिया।
तब मुष्टि कर की तान, दानव दुष्ट ने धावा किया।।१९।।

जा देवि श्री के उर-स्थल, इक मुष्टि मारा क्रोध कर।
दी एक करतल-थाप, देवी ने असुर के वक्ष पर।।२०।।

वह थाप दुस्सह शुम्भ खाकर, गिर पड़ा रण भूमि पर।
पै फिर यकायक ही, समर-उद्यत हुआ वह दैत्य वर।।२१।।

उछला तुरत वह, और देवी को पकड़ नभ में चढ़ा।
तब चण्डिका का शुम्भ से, आधार बिन ही रण बढ़ा।।२२।।

उस दैत्य पति औ देवि में, भीषण समर होने लगा।
देखा प्रथम नभ-युद्ध को, मुनि-सिद्ध-उर विस्मय जगा।।२३।।

बहु काल तक रण अम्बिका का, हुआ दानव घोर से।
फैंका घुमा उसको मही पर, देवि ने नभ-ओर से।।२४।।

भू पर गिरा जब लटपटा कर, दुष्ट मुष्टि सँभाल कर।
श्री चण्डिका की ओर धाया, रूप अति विकराल धर।।२५।।

तब देवि ने कुल-दैत्य-पति को, क्रुद्ध आते देख कर।
छेदी त्रिशूल प्रहार से छाती, गिराया भूमि पर।।२६।।

यों लग त्रिशूलाघात, उसके प्राण-पञ्छी उड़ गये।
ज्योंही गिरा भू-द्वीप-सागर, शैल-सह कम्पित भये।।२७।।

इस भाँति जब वह दैत्यपति, खल शुम्भ दारुण मर गया।
आकाश निर्मल स्वस्थ हो, जग मोद-मंगल भर गया।।२८।।

उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥२९॥

ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः॥३०॥

अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः॥३१॥

जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः॥३२॥

॥ॐ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये शुम्भवधो नाम
दशमोऽध्यायः॥१०॥

॥ॐ॥

थे पूर्व अति उत्पात-सूचक, मेघ उल्कापात जो।
वे शान्त सब तत्क्षण हुए, नदियाँ मुड़ी निज मार्ग को ॥ २९ ॥

उस दुष्ट दानव के मरण पर, देव अति हर्षित हुए।
गन्धर्व-गण के कण्ठ-स्वर से, गीत मृदु गुञ्जित हुए ॥ ३० ॥

शुभ साज मंगल बज उठे, पुनि अप्सरा नाचन लगी।
चलि पवन मन्द सुगन्ध शीतल, रवि-प्रभा चमकन लगी ॥ ३१ ॥

जो थी बुझी यज्ञादि की, पावक स्वतः प्रज्ज्वल भई।
चहुँदिश अमंगल शान्त हो, शुचि शीलता जग में छई ॥ ३२ ॥

॥ ॐ ॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के
अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'शुम्भ-वध' नामक दसवें
अध्याय का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥ १० ॥
॥ ॐ ॥

एकादशोऽध्याय:

देवताओं द्वारा देवी की स्तुति तथा देवीद्वारा देवताओं को वरदान

ध्यानम्

'ॐ' बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां
तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशा-
भीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥१॥

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम्।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्
विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥२॥

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥३॥

ग्यारहवाँ अध्याय

देवताओं द्वारा देवी की स्तुति तथा देवी द्वारा देवताओं को वरदान

ध्यान

ॐ बाल प्रभाकर सम द्युति सोहे। चन्द्र किरीट शीश मन मोहे ॥
तुंग उरोज उभय उर राजैं। त्रय लोचन मुख-मण्डल साजैं ॥
मृदुल हास पंकज मुख बारी। हस्त पाश अंकुश छवि न्यारी ॥
अभय वरद मुद्रा सुख कारी। माँ भुवनेशि भजौं तोहि प्यारी ॥

ऋषिराज कहते, श्री जगन्माँ, जयति जय कात्यायनी।
जय जय असुर पति शुम्भ-हननी, जय नमो नारायनी ॥
सुर-हर्ष मुख-मण्डल-प्रभा का, सकल दिशि था प्रस्फुटन।
कात्यायनी! तुम को नमन ॥

देवी अतुल करुणामयी, आभीष्ट-सिद्धि-प्रदायिनी।
जगमग दिशायें हो उठीं, शुभ-सुभग मंगल दायिनी ॥
कर अग्र सुर इन्द्राग्नि को, करने लगे माँ का स्तवन।
कात्यायनी! तुम को नमन ॥ १-२ ॥

हे शरण-आगत-पीर हरनी, देवि माँ! विश्वेश्वरी।
प्रमुदित रहो हम पर सदा, चर-अचर जगत अधीश्वरी ॥
तुम विश्व की रक्षा करो, हे देवि! हो कर मुग्ध मन।
विश्वेश्वरी! तुम को नमन ॥ ३ ॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥ ४ ॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥ ५ ॥

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥ ६ ॥

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥ ७ ॥

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥

केवल तुम्हीं आधार जग का, मातु! जगत-निरूपिणी।
तुम विक्रमा आलंघनीया, तुम्हीं वसुधा रूपिणी।।
सम्पूर्ण जग में व्याप्त हो, जल में तुम्हीं हो तृप्ति बन।
हे अम्बिके! तुम को नमन।।४।।

तुम अतुल बल सम्पन्न हो, घन शक्ति वैष्णवि सोहिनी।
हे विश्व की कारण स्वरूपा! परामाया मोहिनी।।
भूलोक में ही मुक्त होते, तव कृपा से भक्त जन।
हे वैष्णवी! तुम को नमन।।५।।

विद्या सकल तव रूप हैं, प्रतिरूप सकल शुभांगिनी।
केवल तुम्हीं से व्याप्त है, संसार हे मातंगिनी।।
वाणीपरा! यजनीपरा!! कैसे करें तेरा यजन।
जगदम्बिके! तुम को नमन।।६।।

हे सर्वरूपा! जब तुम्हीं हो, भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी।
इस से अधिक सम्भव हि क्या, हे अम्बिके! तेरा स्तवन।।
नारायणी! तुम को नमन।।७।।

हे बुद्धि रूपा देवि! तुम, जन सकल हृदय विराजिनी।
माँ! स्वर्ग औ अपवर्ग सुख, मिलते सभी तेरे भवन।।
नारायणी! तुम को नमन।।८।।

तुम ही कला-काष्ठादि के, परिणाम फल की दायिनी।
तुम ही जगत-संहार के, सामर्थ्य की हो शक्ति घन।।
नारायणी! तुम को नमन।।९।।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १०॥

सृष्टि स्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ११॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १२॥

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १३॥

त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १४॥

मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १५॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १६॥

तुम सर्व मंगल मंगला, पुरुषार्थ सिद्धि प्रदायिनी।
हो शरण-आगत-वत्सला, गौरी शिवा तुम त्रय नयन।।
नारायणी! तुम को नमन।।१०।।

तुम गुणाधारा सर्व गुण मयि, शक्ति रूप सनातनी।
करती तुम्हीं, हे सर्व-रूपा! सृजन-पालन-संहरण।।
नारायणी! तुम को नमन।।११।।

हे दीन-हीन-दुखी जनों की, सर्व बाधा नाशिनी।
निज शरण-आगत की सुरक्षा, है सदा तेरा वचन।।
नारायणी! तुम को नमन।।१२।।

ब्रह्माणि रूपा हो तुम्हीं, कल-हंस-वाहन-राजिनी।
तुम कुशा-जल को छिड़कती, कल्याण-हित-विश्वायतन।।
नारायणी! तुम को नमन।।१३।।

हे चन्द्र-नाग-त्रिशूल-धारिणि! हे महा-वृष-वाहिनी!
माहेश्वरी शुभ रूप धर, तुम राजती शिव के सदन।।
नारायणी! तुम को नमन।।१४।।

कुक्कुट-मयूर-सुमध्य, हे कौमारि रूप-सु-धारिणी!
वह महा शक्ति अपार तुम, निष्पाप है जिस का अयन।।
नारायणी! तुम को नमन।।१५।।

तुम शंख चक्र गदा धनुष, आयुध विविध कर धारिणी।
हे शक्ति-रूपा वैष्णवी! रहिये सदैव प्रसन्न मन।।
नारायणी! तुम को नमन।।१६।।

गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते॥१७॥

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते॥१८॥

किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते॥१९॥

शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते॥२०॥

दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते॥२१॥

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे।
महारात्रि महामाये नारायणि नमोऽस्तु ते॥२२॥

मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते॥२३॥

कर महा चक्र लिये भयंकर, रूप धर वाराहिनी।
निज दाढ़ पर धारे धरा, कल्याण मय तेरा भजन॥
नारायणी! तुम को नमन॥१७॥

हे नृसिंह रूप भयावहा! तुम दैत्य-वध-उद्योगिनी।
तिहुँ लोक रक्षा-हित, जगन्माँ! हो तुम्हीं संलग्न मन॥
नारायणी! तुम को नमन॥१८॥

कर महा-वज्र-किरीट भाल, सहस्त्र नयना-दीप्तिनी।
हे इन्द्र शक्ति! किया तुम्हीं ने, वृत्र-प्राणों का हनन॥
नारायणी! तुम को नमन॥१९॥

शिव-दूति-रूपा हो तुम्हीं, कुल-असुर-सैन्य-सँहारिणी।
हे विकट रूप भयंकरा! तव नाद काँपे भू-गगन॥
नारायणी! तुम को नमन॥२०॥

तुम दंष्ट्र घोर कराल वदना, मुण्ड माला धारिणी।
चामुण्डिके! हे मुण्ड मर्दिनि! दुष्ट तुम करती दलन॥
नारायणी! तुम को नमन॥२१॥

हे लक्ष्मि लज्जा महा विद्या, ध्रुवा पुष्टि स्वधायिनी।
श्रद्धा महा रात्री, महामाया तुम्हारे ही मनन॥
नारायणी! तुम को नमन॥२२॥

मेधा सरस्वति भूति बाभ्रवि, वरा ईशा रूपिणी।
नियता स्वरूपा हो तुम्हीं, हो तामसी तुम ही सघन॥
नारायणी! तुम को नमन॥२३॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥२४॥

एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम्।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥२५॥

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते॥२६॥

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत्।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव॥२७॥

असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम्॥२८॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
ददासि कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥२९॥

एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
धर्मद्विषां देवि महासुराणाम्।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या॥३०॥

सर्वस्व रूपा सर्व-सर्वा, सर्व-शक्ति स्वरूपिणी।
भय से सभी रक्षार्थ, दुर्गे! आए हम तेरी शरण॥
हे दुर्गमा! तुम को नमन॥२४॥

तव तीन नयनों से सुशोभित, सौम्य मुख, कात्यायनी।
रक्षा करे सब भाँति, माँ! तुम हो बड़ी करुणा-यतन॥
कात्यायनी! तुम को नमन॥२५॥

हे भद्रकालि! कराल ज्वाला, अति भयंकर भासिनी।
त्रय शूल तव, रक्षा करे, जिसने विदारे असुर-तन॥
हे कालिके! तुम को नमन॥२६॥

जग व्याप्त घण्टा नाद कर, हे दैत्य-तेज- विनाशिनी।
वह पाप से हम को उबारे, मातु जैसा हृदय बन॥
हे देवि माँ! तुम को नमन॥२७॥

यह खड्‌ग तव, हे माँ! दनुज-दल-मेद-शोणित से सनी।
सब का सदा मंगल करे, शिव सत्य सुन्दर रूप बन॥
हे चण्डिके! तुम को नमन॥२८॥

तव तुष्टि रोग सकल हरे, आभीष्ट सर्व प्रदायिनी।
तव शरण में आपद कहाँ, हे मातु! मंगल-दायिनी॥
तुम ने जिन्हें अपना लिया, वे अन्य को देते शरण।
हे अम्बिके! तुम को नमन॥२९॥

नाना विभाग विभक्त कर, हे विविध रूप-सु-धारिणी।
इस धर्म-द्रोही दनुज-दल की, माँ! तुम्हीं संहारिणी॥
है कौन तुम बिन कार्य दुष्कर, सहज ही करती वरण।
हे अम्बिके! तुम को नमन॥३०॥

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्॥ ३१॥

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्॥ ३२॥

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः॥ ३३॥

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्॥ ३४॥

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव॥ ३५॥

देव्युवाच॥ ३६॥

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम्॥ ३७॥

हो तुम्हीं विद्या सकल में, सुविवेक-ज्योति-प्रकाशिनी।
हो वेद-शास्त्रों में तुम्हीं, सर्वाग्र शक्ति सु-भाषिनी॥
तुमने हि ममता-गर्त में, जग का किया भँवरी-करण।
हे अम्बिके! तुम को नमन॥ ३१॥

रिपु हों लुटेरे, सिन्धु-लहरें, अग्नि हो वन-भक्षिणी।
राक्षस भयंकर नाग हों, तुम विश्व की हो रक्षिणी॥
संकट जहाँ भी हो, सहायी हैं सदा तेरे चरण।
हे बलप्रदे! तुम को नमन॥ ३२॥

विश्वेश्वरी! तुम जगत-पालिनि, विश्वरूप-स्वरूपिणी।
हे विश्वनाथ सु-वन्दिते! यह जग तुम्हीं हो धारिणी॥
सहभक्ति जो तुम को नवैं, संसार को देते शरण।
विश्वेश्वरी! तुम को नमन॥ ३३॥

हम पर प्रसन्न रहो सदा, हे माँ! दनुज-दल-नाशिनी।
हम को बचाओ शत्रु-भय से, जगत पाप विनाशिनी॥
अघ-फल स्वरूपा महामारी, का करो तुम निर्हरण।
परमेश्वरी! तुम को नमन॥ ३४॥

हम पर मुदित हो, हे दयामयि! जगत कष्ट निवारिणी।
त्रयलोक वासी पूजिते! हे मोद-मंगल-कारिणी!!
वरदान दो, माँ! जन सकल कों, जो पड़े हैं तव चरण।
नारायणी! तुमको नमन॥ ३५॥

हे देवगण! वर माँग लो, मन मुदित देवी ने कहा।
दूँगी जगत कल्याण कारी, मैं तुम्हें वर मन-चहा॥ ३६-३७॥

देवा ऊचुः ॥३८॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥३९॥

देव्युवाच ॥४०॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥४१॥

नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥४२॥

पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥४३॥

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान्।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥४४॥

ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥४५॥

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥४६॥

ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥४७॥

ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥४८॥

तब देव बोले, माँ! सकल बाधा हरो तिहुँलोक की।
रिपु सब हमारे नष्ट हों, अखिलेश्वरी वर दो यही ।।३८-३९।।

करुणामयी माँ भगवती, सुन देवगण के वचन को।
यों भक्त-भव-भय-हारिणी, कहने लगी निज कथन को ।।४०।।

जब काल मन्वन्तरी, अट्ठाईसवाँ युग आएगा।
फिर शुम्भ और निशुम्भ होंगे, जगत अति भय खाएगा ।।४१।।

तब नन्द गोप पवित्र गृह, यशुमति उदर से प्रकट हो।
मैं शैल विन्ध्याचल बसूँ, सब दैत्य-कुल ही नष्ट हो ।।४२।।

पुनि अति भयंकर रूप से, अवतार लूँगी भूमि-थल।
औ वैप्रचित्त महा दनुज-दल को, हनूँगी मैं प्रबल ।।४३।।

भक्षण करूँगी जब उन्हें, तब दैत्य-रक्त-अपार से।
उस काल होंगे लाल मेरे, दाँत पुष्प-अनार-से ।।४४।।

सुर-वृन्द सब सुर-लोक में, औ मनुज-गण भू-लोक में।
मुझ को भजेंगे रक्त-दन्ती, कह सभी तिहुँ लोक में ।।४५।।

शत वर्ष तक इस भूमि पर, नहिं वृष्टि होगी जिस समय।
मुनि स्तुति करेंगे मम, अजा मैं प्रकट हूँगी उस समय ।।४६।।

शत नयन धरि उर मुनिन के, बस मैं निहारूँगी जभी।
शत्ताक्षि तब मुझ को कहेंगे, नारि-नर जग में सभी ।।४७।।

औ जब तलक होगी न वर्षा, तब तलक, हे देवगण!
मैं निज शरीरज शाक से, पालन करूँगी विश्व-जन ।।४८।।

शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥४९॥

दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥५०॥

रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ॥५१॥

भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥५२॥

तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम्।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥५३॥

भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥५४॥
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥५५॥

॥ ॐ ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवी माहात्म्ये देव्याः स्तुति-
र्नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥
॥ ॐ ॥

तब जगत में शाकम्भरी, मुझ को कहेंगे जन सकल।
औ दुर्ग नामक दैत्य भी, तब मैं सँहारूँगी सबल।।४९।।

यों देवि दुर्गा नाम से, मैं ख्याति जग में पाउँगी।
फिर भीम तन को धारि के, हिमगिरि शिखर पर जाउँगी।।५०।।

तहँ मुनि जनों के त्राण-हित, भक्षण करूँगी दनुज-तन।
मुनि सकल श्रद्धा नत करेंगे, मिल सभी मेरा स्तवन।।५१।।

इस भाँति भीमा जन सभी, मुझ को कहेंगे लोक में।
उत्पात-कारी दैत्य इक, होगा अरुण त्रय-लोक में।।५२।।

त्रय-लोक के कल्याण हित, अरि-भय-निवारण के लिए।
उसको हनूँगी अमित षट्-पद, भ्रमर-तन धारण किए।।५३।।

तब जन सभी मम स्तुति करेंगे, भ्रामरी के नाम से।
रक्षित रहेगा लोक वह, मम तेज-अंश-ललाम से।।
एहि भाँति जब जब जगत में, दल-दैत्य-बाधा विकट हो।
अवतार धर तब तब करूँगी, नाश उन का प्रकट हो।।५४-५५।।

।।ॐ।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर कथा के अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'देवी स्तुति' नामक ग्यारहवें अध्याय का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।।११।।

।।ॐ।।

द्वादशोऽध्यायः

देवी-चरित्रोंके पाठका माहात्म्य

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥

'ॐ' देव्युवाच॥१॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम्॥२॥

मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम्।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः॥३॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम्॥४॥

न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम्॥५॥

शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति॥६॥

बारहवाँ अध्याय

देवी-चरित्रों के पाठ का माहात्म्य

ध्यान

ॐ विद्युद्दाम प्रभा सम साजै। मृगपति पीठ भयंकर राजै॥
खड्ग ढाल कर धरहिं कुमारी। कन्या सेवा रत चहुँ द्वारी॥
चक्र गदा असि खेटक बाना। धनुष पाश शोभित कर नाना॥
तर्जनि मुद्रा शुभ कर सोहे। अग्नि रूप माँ दर्शक मोहे॥
चन्द्र मुकुट वर मस्तक राजै। तीन नयन अनुपम छवि छाजै॥
धरौं ध्यान तव दुर्गे माता। सकल ऋद्धि सिधि सम्पति दाता॥

सब देव कर जोरे खड़े थे, हृदय में उल्लसित हो।
यों कह रही थी माँ भवानी, अम्बिका मन मुदित हो॥ १॥

मम सुस्तवों का दत्त-चित, पाठन करेगा जो सदा।
उस भक्त की बाधा सकल, निश्चित हरूँगी सर्वदा॥ २॥

जो नित्य मधु कैटभ वधन, औ महिष-आसुर हनन का।
कीर्तन करें जन, दैत्य शुम्भ-निशुम्भ के निर्दलन का॥ ३॥

औ अष्टमी नवमी चतुर्दशि, श्रेष्ठ मम माहात्म्य को।
जो भक्ति-सह पाठन करें, अथवा सुनें दतचित्त हो॥ ४॥

नहिं छू सकेगा पाप कोई, उन्हें अघ-आपत्ति भी।
घर में न हो दारिद्र्य, बिछुड़ेंगे न प्रेमी जन कभी॥ ५॥

अतिरिक्त इसके नृप, लुटेरों, अग्नि, जल, रिपु-घात का।
उनको न होगा भय कदाचित, शस्त्र के आघात का॥ ६॥

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत्॥७॥

उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम॥८॥

यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे स्थितम्॥९॥

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च॥१०॥

जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम्।
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम्॥११॥

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः॥१२॥

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥१३॥

श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान्॥१४॥

रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम्॥१५॥

शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम॥१६॥

अतएव मम माहात्म्य नित, एकाग्र कर मन-प्राण को।
नियमित पढ़े जन या सुने, पावे परम कल्याण को॥७॥

माहात्म्य मेरा दैहि-दैविक और भौतिक ताप के।
हरता उपद्रव, सब महामारी-जनित सन्ताप के॥८॥

होता सुनियमित पाठ, जिस पूजा-सदन में मम सदा।
उसको न तजती हूँ कभी, बसती वहाँ मैं सर्वदा॥९॥

बलि होम पूजा औ महोत्सव, आदि जो अवसर परें।
सम्पूर्ण चरित सुपाठ मम, पाठन-श्रवण सब जन करें॥१०॥

विधि जान कर अथवा अजाने, जो करे इस भाँति जन।
बलि अर्चना होमादि सब, स्वीकारती मैं मुग्ध मन॥११॥

प्रतिवर्ष जो ऋतु शरद में, शुभ महा पूजा मम करे।
उस काल मम माहात्म्य को, जो भी पढ़े, सुन चित धरे॥१२॥

जन सोइ परम प्रसाद मम, भव विघ्न बाधा से टरे।
धन धान्य पुत्र कलत्र-सह, निश्शंक मुद मंगल भरे॥१३॥

माहात्म्य मम उत्पत्ति क्रम, औ रण-पराक्रम चित धरे।
वह युद्ध में निर्भय रहे जन, शत्रुओं को जय करे॥१४॥

माहात्म्य के मम श्रवण से ही, नष्ट रिपु होते सदा।
कल्याण की शुभ प्राप्ति हो, आनन्द-मय कुल सर्वदा॥१५॥

सब शान्ति-कर्म-विधान में, दुख-स्वप्न-दर्शन-काल में।
जो जन पढें अथवा सुनें, ग्रह-जनित अनहित चाल में॥१६॥

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ १७ ॥

बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम्।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ १८ ॥

दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम्।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥ १९ ॥

सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम्।
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥ २० ॥

विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम्।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥ २१ ॥

प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते।
श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ॥ २२ ॥

रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम।
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥ २३ ॥

तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ २४ ॥

ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभांमतिम्।
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥ २५ ॥

उनके उपद्रव शान्त हों, ग्रह-उग्र-पीड़ा नष्ट हो।
जो स्वप्न भी देखें बुरा, तो फल सदा आभीष्ट हो ॥१७॥

यदि बाल ग्रह-आक्रान्त हों, यह शान्ति कारक है वहाँ।
जहँ संगठन में भेद हो, सौहार्द का पूरक तहाँ ॥१८॥

खल दुराचारी जन सकल का, बल विनाशन हार है।
औ भूत-दैत्य-पिशाच-मारन, मन्त्र घोर अपार है ॥१९॥

कर पाठ यह माहात्म्य जन, सान्निध्य मम पाते सदा।
पशु-पुष्प अर्घ्य सधूप-दीप-सुगन्ध जो ध्याते सदा ॥२०॥

शुचि ब्रह्म भोजन हवन औ, व्यञ्जन विविध अर्पण करे।
अभिषेक नित कर दान दे, इक वर्ष आराधन करे ॥२१॥

जो हर्ष होता है मुझे, इस-विध किये सत्कृत्य से।
है प्रीति उतनी प्राप्त होती, श्रवण इक माहात्म्य से ॥
इक श्रवण इस माहात्म्य का, सब पाप करता नष्ट है।
आरोग्य-दायक है सदा, हरता सकल भव-कष्ट है ॥२२॥

मम जन्म का शुभ कीर्तन, भूतादि से रक्षा करे।
पुनि युद्ध-विषयक चरित मम, दल-दनुज-प्राणों को हरे ॥२३॥

उनका श्रवण, सुरवृन्द! रिपु-भय नष्ट करता सर्वदा।
जो ब्रह्मऋषियों और तुमने, करी मम संस्तुति सदा ॥२४॥

औ अज चतुर्मुख ने सभी, अब तक करी जो विनय-वर।
हैं वन-विजन, दावाग्नि में भी, बुद्धि-प्रद कल्याण-कर ॥२५॥

दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः।
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥२६॥

राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा।
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥२७॥

पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे।
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ॥२८॥

स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात्।
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥२९॥
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥३०॥

ऋषिरुवाच ॥३१॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥३२॥
पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत।
तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान् यथा पुरा ॥३३॥
यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः।
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥३४॥
जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥३५॥

एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥३६॥

तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥३७॥

रक्षा करे वर-बुद्धि, फँस रिपु-दस्युओं के दाव में।
वन बाघ सिंहों दिग्गजों में, और निर्जन ठाँव में ॥२६॥

नृप-कोप आज्ञा-वश घिरे, वध याकि बन्दी स्थान में।
अथवा जलधि में डगमगाती, नाव पर तूफ़ान में ॥२७॥

औ अति भयंकर युद्ध में, आक्रान्त शस्त्र-प्रहार से।
या वेदना-वश या सकल-विध, विघ्न के अतिचार से ॥२८॥

जो चरित मम सुमिरन करे, उस की सभी बाधा टरें।
सिंहादि हिंस्त्रक नष्ट हों, रिपु-दस्यु भी उससे डरें ॥२९-३०॥

ऋषि ने कहा-यों कह वचन, चण्डिका अति विक्रम मयी।
सुरवृन्द रहे विलोकि, देवी ध्यान-अन्तर हो गयी ॥
निर्भय हुए सुरगण सभी, रिपु नष्ट उनके हो गये।
अधिकार निज-निज प्राप्तकर, सब पूर्ववत प्रमुदित भये ॥
जगध्वंस कारी शुम्भ दानव, देव-द्रोहि पराक्रमी।
औ महा वीर्य निशुम्भ मारे, देवि ने अति विक्रमी ॥
लखि देवि ने यों हने, शुम्भ-निशुम्भ दैत्य कराल वे।
दानव बचे थे शेष जो, भागे तुरत पाताल वे ॥३१-३५॥

राजन! सुनो, इस भाँति वह, नित्या भवानी भगवती।
इस जगत-रक्षा-हेतु, पुनि-पुनि प्रकट होती सतमती ॥३६॥

वह कुल जगत मोहित करे, जग-जीव-जन्म प्रदायिनी।
याचित हुई विज्ञान, तुष्टा ऋद्धि-समृधि दायिनी ॥३७॥

व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥ ३८ ॥

सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥ ३९ ॥

भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे।
सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥ ४० ॥

स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ॥ ४१ ॥

॥ ॐ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये फलस्तुतिर्नाम
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥
॥ ॐ ॥

नर-ईश! इस ब्रह्माण्ड में, है व्याप्त वह सर्वेश्वरी।
युग-अन्त में वह महाकाली, महामारि भयंकरी ।। ३८ ।।

वह महामारी काल-अन्तर, पूर्ण भूत सुरक्षिणी।
है अजा, पर पुनि-पुनि प्रकटती, सृष्टि-रूप सनातनी ।। ३९ ।।

उन्नति समय जन-जगत-गृह, वह लक्ष्मि-वृद्धि स्वरूपिणी।
आपत्ति काल वही सदा, दारिद्र्य भव-दुख रूपिणी ।। ४० ।।

शुचि धूप-दीप-सुगन्ध-सह, पूजन-स्तवन से भगवती।
धन पुत्र धर्माचारिणी मति, और देती शुभ गती ।। ४१ ।।

।। ॐ ।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के
अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'फल-स्तुति' नामक बारहवें
अध्याय का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ ।। १२ ।।

।। ॐ ।।

त्रयोदशोऽध्याय:

सुरथ और वैश्यको देवी का वरदान

ध्यानम्

ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥१॥

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत्॥२॥

विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिन:॥३॥

मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम्॥४॥

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा॥५॥

मार्कण्डेय उवाच॥६॥

इति तस्य वच: श्रुत्वा सुरथ: स नराधिप:॥७॥
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम्।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च॥८॥

जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने।
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थित:॥९॥

तेरहवाँ अध्याय

सुरथ और वैश्यको देवी का वरदान

ध्यान

ॐ बाल सूर्य मण्डल सम भ्राजी। चतुर्भुजा लोचन त्रय साजी॥
अभय वरद पाशांकुश धारिनि। भजौं शिवा भक्तन भवतारिनि॥

कह मुनीश ब्रह्मन् सुनु बानी। जो सुरथहिं ऋषिराज बखानी॥ १ ॥

राजन्! सुनो इस-विध कहा, माहात्म्य उत्तम सार को।
उस देवि माँ सु-प्रभाव को, जो धारती संसार को॥२॥

वे ज्ञान विद्या दायिनी, श्री विष्णु माया रूप हैं।
उनके सुवश यह वैश्य, तुम औ अन्य मोहित, भूप! हैं॥३॥

थे मोह-वश, हैं मोह-वश, मोहित रहेंगे और भी।
उस भगवती की शरण ही में, नृपति! उत्तम ठौर भी॥४॥

आराधना से देवि देती, स्वर्ग-मोक्ष-सुभोग को।
नित भक्त जन पर कर कृपा, हरती सकल भव-रोग को॥५॥

बोले महामुनि मार्कण्डेय, नृपति ने यों सुन वचन।
उत्तम व्रती मेधा महर्षी, को किया सादर नमन॥
नृप सुरथ अन्यमनस्क-से, उस काल भावापन्न थे।
वे राज्य के अपहरण और ममत्व से अति खिन्न थे॥६-८॥

इस भाँति, हे मुनिवर! चले, राजा सुरथ औ वैश्यवर।
देवी दरश के हेतु, बन तपसी, नदी के तीर पर॥९॥

स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन्।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम्॥ १०॥

अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ॥ ११॥

ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम्।
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः॥ १२॥

परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका॥१३॥

देव्युवाच॥ १४॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत्॥१५॥

मार्कण्डेय उवाच॥१६॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुलं बलात्॥१७॥

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम्॥१८॥

देव्युचाच॥१९॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान्॥२०॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति॥२१॥

नृप वैश्य देवी-सूक्त-जप, करने लगे थे तप घना।
दोनों वहाँ श्री देवि की, इक मूर्ति मिट्टी की बना।।१०।।

शुचि हवन-गन्ध-प्रसून से, शुभ अर्चना करने लगे।
आहार क्रमशः त्याग, निर्-आहार वे रहने लगे।।
श्री देवि का ही ध्यान धर, सह-भक्ति आराधन किया।
एकाग्र मन हो कर सदा, उस मातु का चिन्तन किया।।११।।

लहु-बिन्दुओं का देह से, बलिदान दोनों ने किया।
त्रय वर्ष तक एकाग्र हो, शुभ साधना में चित दिया।।१२।।

श्री जगन्माता चण्डिका, सन्तुष्ट हो प्रकटित भई।
राजा सुरथ औ वैश्य के, सम्मुख अमित प्रमुदित भई।।१३।।

कहने लगी, हे नृपतिवर! हे वैश्य कुलनन्दन! कहो।
परितुष्ट हूँ, वरदान मैं दूँगी तुम्हें, जो भी चहो।।१४-१५।।

बोले मुनी, नृप-वैश्य ने, कर जोरि मातृ-नमन किया।
करुणा-मयी माँ से सुरथ ने, नम्र आवेदन किया।।१६।।

नृप ने कहा, पर-जन्म में, हे माँ! अखण्ड स्वराज्य लूँ।
औ शत्रु सब रण में हरा, जाकर अभी निज राज्य लूँ।।१७।।

वह वैश्य था अति खिन्न, किन्तु विरक्त औ विद्वान था।
ममता अहं आसक्ति-हर, वह चाहता बस ज्ञान था।।१८।।

तब महा-माया भगवती ने कहा, हे राजन् प्रवर!
निज राज्य पाओगे पुनः, तुम शत्रु-मद को चूर कर।।१९-२१।।

मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥२२॥
सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥२३॥

वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥२४॥
तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥२५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥२६॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥२७॥

बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता।
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥२८॥
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥२९॥
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः।
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ क्लीं ॐ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये सुरथ-वैश्ययोर्वर प्रदानं
नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

फिर सूर्य से उत्पन्न हो, सावर्णि मनु कहलाओगे।
इस भूमि पर तुम, हे नृपति! बहु काल यश को पाओगे।।२२-२३।।

हे वैश्य-वर! तुम पाओगे, निज अभिलषित वरदान को।
तव मोक्ष के हित दे रही हूँ, तत्व के इस ज्ञान को ।।२४-२५।।

मुनिनाथ बोले-अम्बिका, यों दे विविध वरदान को।
नृप वैश्य की संस्तुति सुनी, औ गई अन्तरधान हो ।।२६-२७।।

इस भाँति पा वरदान, क्षत्रिय श्रेष्ठ सुरथ सुज्ञात वे।
ले जन्म होंगे सूर्य से, सावर्णि मनु विख्यात वे ।।२८-२९।।
इस भाँति पा वरदान, क्षत्रिय श्रेष्ठ सुरथ सुज्ञात वे।
ले जन्म होंगे सूर्य से, सावर्णि मनु विख्यात वे ।।क्लीं ॐ।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'सुरथ और वैश्य को वरदान' नामक तेरहवें अध्याय का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।।१३।।

ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्

ध्यानम्

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

देवीसूक्तम्

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥१॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते॥२॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्य्यावेशयन्तीम्॥३॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः
प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि
श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥४॥

ऋग्वेदोक्त देवी सूक्त

ध्यान

ॐ सिंहपीठ मनहर छवि छाजै। माथे मुकुट-मयंक सुसाजै॥
मरकत मणि सुकान्त भुज चारी। शंख चक्र धनु सायक धारी॥
भ्रकुटि देश लोचन त्रय सोहें। विविध अंग भूषण मन मोहें॥
कंगन हार बाजु-बँद साजैं। कटि करधनि पद नूपुर बाजैं॥
रत्न जड़ित कुण्डल छवि पावैं। माँ दुर्गा दुर्गति विनसावैं॥

मैं रुद्र वसु आदित्य, विश्वेदेव-गण अधिरूपिणी।
इन्द्राग्नि अश्विनि वरुण मित्र गणादि भाव-निरूपिणी॥ १॥

भग सोम त्वष्टा और पूषा, सकल मैं ही धारती।
यजमान शुचि हवि सोम अर्ची, को सुफल धन वारती॥ २॥

मैं पूर्ण जगत अधीश्वरी, धन-द्रव्य देती भक्त को।
रचती प्रपञ्च अनेक हूँ, परब्रह्म से अविभक्त हो॥
मैं दर्शनीया प्रथम पूज्या, सर्व-भूता हूँ सदा।
सब देव जहँ-तहँ साधना, मम हेतु करते सर्वदा॥ ३॥

जो अन्न खाता, देख-सुनता, श्वास लेता जीव है।
सब इन्द्रियों के कर्म में, मम शक्ति-स्रोत अतीव है॥
जो जान पाते हैं नहीं, मम शक्ति को इस रूप से।
इस काज ही अति दीन हैं, तरते न वे भव-कूप से॥
श्रद्धा सहित पाते सुजन, जिस ब्रह्म तत्व विशेष को।
बहुश्रुत, सुनो! मैं कह रही, उस तत्व के उपदेश को॥ ४॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं
देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ।।५।।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ।। ६ ।।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम
योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वो-
तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ।।७।।

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव ।।८।।

इति ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तं सम्पूर्णम् ।।

पाते जिसे सुर और नर, कर यज्ञ जप-तप-साधना।
वह तत्व वर्णन कर रही हूँ, जो सुदुर्लभ अति घना॥
जो-जो मनुज भजते मुझे हैं, अमित श्रद्धा-भक्ति से।
उन को अपेक्षित अन्य के, करती निपुण मैं शक्ति से॥
ऋषि मैं बनाती हूँ उन्हें, सम्पूर्ण ज्ञान परोक्ष दे।
फिर सृष्टि-कर्ता ब्रह्म-सम, सम्पन्न मेधा शक्ति से॥५॥

मैं ब्रह्म द्वेषी हिंस्र, दानव-गण निपातन करन को।
हूँ रुद्र धनु को सारती, निज भक्त-भव-दुख हरन को॥
रिपु-नाशिनी, शरणागतों की, मैं सुरक्षा हेतु हूँ।
अम्बर धरा में व्याप्त प्रति पल, शक्ति-गुण-गण सेतु हूँ॥६॥

जग का अखिल है अधिष्ठान-स्वरूप जो परमात्मा।
उससे अपर मैं पितृ-रूपी, व्योम की सृजनात्मा॥
सम्पूर्ण भूतोद्भव तथा, है बुद्धि-वृत्ति-समूह जो।
मैं सकल जल-थल में सकारण, रच रही इस व्यूह को॥
अतएव जग सर्वात्म की, हूँ सर्व-सर्वा स्वामिनी।
मैं हेतु चेतन ब्रह्म की, औ स्वर्ग की उद्भासिनी॥७॥

रचती स्वयं हूँ मैं सकल, जग के सकारण रूप को।
बिन प्रेरणा ही वायु गति-सम, कर्म में दतचित्त हो॥
मैं इस धरा-आकाश, दोनों से पृथक इस भाँति हूँ।
निज महा महिमा से जगत की, मैं सृजक इस भाँति हूँ॥८॥

इस प्रकार ऋग्वेदोक्त देवी सूक्त का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।

अथ तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥१॥

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः॥२॥

कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः॥३॥

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः॥४॥

अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः॥५॥

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः॥६॥

तन्त्रोक्त देवी सूक्त

जय नमो देवी महा देवी, हे शिवे! शत शत नमन।
भद्रा प्रकृति सुखदायिनी, माता! तुम्हें नियमित नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।१।।

रौद्रा सुनित्या देवि गौरी, सुख स्वरूपा को नमन।
जय जगद् धात्री ज्योत्स्ना छवि, चन्द्र रूपा को नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।। २।।

शुभ राजलक्ष्मी को नमन, ऋधि-सिद्धिदात्री को नमन।
शर्वाणि नैर्ऋति देवि श्री, कल्याण-कर्त्री को नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।। ३।।

जय देवि दुर्गा सर्वकारिणि, दुर्ग पारा को नमन।
धूमावती शुभ ख्याति कृष्णा, सतत सारा को नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।४।।

अति सौम्य औ अति रौद्र रूपा, देवि को सविनय नमन।
कृति जग प्रतिष्ठा रूपिणी को, विनत श्रद्धामय नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।५।।

तुम विष्णुमाया ख्यात हो, माँ! सर्व जग विख्यात हो।
तुम महामाया ज्ञात हो, बहुविध करें तुमको नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।६।।

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥७॥

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥८॥

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥९॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥१०॥

या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥११॥

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२॥

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥१३॥

तुम चेतना अभिरूपिणी, जग-जीव-प्राण स्वरूपिणी।
हे सर्वगत सद्रूपिणी! सादर करें तुमको नमन॥
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन॥७॥

तुम प्राणियों में भगवती, सद्बुद्धि रूपा सतमती।
हे ज्ञान-प्रज्ञ प्रभावती! सविनय करें तुमको नमन॥
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन॥८॥

तुम रूप-निद्रा धारिणी, जग-जीव निज वश कारिणी।
हे देह की उपकारिणी! श्रद्धा सहित तुमको नमन॥
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन॥९॥

तुम क्षुधा घोर अपार हो, तुम जगत प्राणाधार हो।
तन-मन सँवारन हार हो, हे देवि! है तुम को नमन॥
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन॥१०॥

तुम प्राणियों में सर्वदा, छाया स्वरूपा हो सदा।
हे सकल जन-मन सुख प्रदा! कर जोरि हैं तुमको नमन॥
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन॥११॥

तुम शक्तिरूप विशाल, माँ! तुम काल की भी काल, माँ!
हो रक्षिणी तत्काल, माँ! सादर करें तुमको नमन॥
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन॥१२॥

तुम रूप तृष्णा साजती, हो हृदय मध्य विराजती।
बन दु:ख-रूपा राजती, हम नित करें तुमको नमन॥
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन॥१३॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।१४।।

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।१५।।

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।१६।।

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।१७।।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।१८।।

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।१९।।

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।२०।।

अन्तः करण में स्थित हुयी, माँ! तुम क्षमा करुणामयी।
तुम हो सकल तापञ्जयी, सादर करें तुमको नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।१४।।

जग-जाति रूप प्रसिद्ध हो, तुम सब वरण में सिद्ध हो।
कल्याण हित प्रतिबद्ध हो, करते सभी तुमको नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।१५।।

तुम देवि! लज्जा रूप हो, दृग-मध्य रूप अनूप हो।
मंगल करी सद्‌रूप हो, सविनय करें तुमको नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।१६।।

हे देवि! शान्ति स्वरूप तुम, जग-जीव की सुख रूप तुम।
हो सुखद कोश अनूप तुम, सादर करें तुमको नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।१७।।

श्रद्धा तुम्हीं करुणा करी, हे भक्त आपद-भय-हरी!
तुम सकल जन मंगल भरी, नित-नित करें तुमको नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।१८।।

तुम कान्ति रूप ललाम हो, देवी! नयन अभिराम हो।
जग-मोह-माया-धाम हो, सब ही करें तुमको नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।१९।।

तुम देवि लक्ष्मि स्वरूप हो, भव में विभव का रूप हो।
तुम चञ्चला प्रतिरूप हो, सादर करें तुमको नमन।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन।।२०।।

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।२१।।

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।२२।।

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।२३।।

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।२४।।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।२५।।

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ।।२६।।

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ।।२७।।

हो शुद्ध वृत्ति स्वरूप तुम, जग-जीव में तद्रूप तुम।
अतुलित प्रभाव अनूप तुम, है नत नयन, तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।।२१।।

तुम सकल मानस राजती, बन स्मरण शक्ति विराजती।
श्रद्धा सहित, हे सतमती! नत भाल है तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।। २२ ।।

सब के हृदय द्युतिमान हो, अति दया रूप प्रधान हो।
तुम आर्द्र चित्त महान हो, सविनय करें तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।। २३ ।।

जग-जीव के उर छा रही, सन्तोष रूप समा रही।
है नमन बारम्बार ही, देवी! सदा तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।। २४ ।।

तुम मातृ रूपा अम्बिके, हे जग-जननि जगदम्बिके!
हो सर्व जग-अवलम्बिके, नित-नित करें तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।। २५ ।।

सबके मनस् पर छा रही, बन भ्रान्ति-रूप समा रही।
जन-मन तुम्हीं भरमा रही, सादर करें तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।। २६ ।।

तुम देह-इन्द्रिय की सकल, इक अधिष्ठात्री हो प्रबल।
हो व्याप्त जीवों में अखिल, हम सब करें तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।। २७ ।।

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥२९॥

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥३०॥

इति तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम् सम्पूर्णम्॥

तुम सर्व जग जगदीश्वरी, चित्-शक्ति रूपा ईश्वरी।
जग-जीव सकल अधीश्वरी, नियमित करें तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।। २८ ।।

सुरराज ने तव, ईश्वरी! बहु काल तक सेवा करी।
भव-दु:ख-भय-आपद हरी, हे मंगला ! तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।। २९ ।।

दल-दैत्य से ताड़ित हुए, सुख-चैन से वञ्चित हुए।
माँ! तव चरण आश्रित हुये, हम सब करें तुमको नमन ।।
देवी नमन। तुमको नमन। पुनि-पुनि नमन ।। ३० ।।

इस प्रकार तन्त्रोक्त देवीसूक्त का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।

श्री देव्यथर्वशीर्षम्

ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति ।।१।।

साब्रवीत्–अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृति-
पुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च ।।२।।

अहमानन्दानानन्दौ। अहं वज्ञानाविज्ञाने।
अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये।
अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि।
अहमखिलं जगत् ।।३।।

वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम्।
अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम् ।।४।।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत
विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि।
अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ।।५।।

अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि।
अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि ।।६।।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय
सुन्वते। अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी
प्रथमा यज्ञियानाम्। अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम
योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। य एवं वेद।
स दैवीं सम्पदमाप्नोति ।।७।।

श्री देव्यथर्व शीर्ष

सुरगण सभी एकत्र हो, इक काल देवी पहँ गये।
तुम कौन हो, हे महा देवी ! जोरि कर पूछत भये।।१।।

कहने लगी तब देवि यों, मैं स्वयं ब्रह्म-स्वरूप हूँ।
मैं हूँ प्रकृति, मैं ही पुरुष, जड़ और जङ्गम रूप हूँ।।२।।

आनन्द अन-आनन्द हूँ, विज्ञान अनविज्ञान भी।
जग सर्व पञ्च-अपञ्च, ब्रह्म-अब्रह्म, ज्ञेय-विधान भी।।३।।

हूँ वेद और अवेद मैं, विद्या अविद्या हूँ सभी।
अनजा-अजा मैं ही अधः भी, ऊर्ध्व भी पुनि पार्श्व भी।।४।।

आदित्य विश्वेदेव औ, वसु-रुद्र-गण संचरण मैं।
इन्द्राग्नि अश्विनि मित्रसह, करती सुपोषित वरुण मैं।।५।।

मैं धारती भग सोम, त्वष्टा और पूषा हूँ सभी।
ब्रह्मा प्रजापति, विष्णु हरि-अवतार वामन रूप भी।।६।।

ज़ो हव्य उत्तम होमते, हैं सोम रस लहते सदा।
उनके निमित हूँ धारती, हवि-द्रव्य-धन मैं सर्वदा।।
धनदा, प्रथम यजनीय हूँ, मैं ब्रह्मरूपा ईश्वरी।
व्योमादि मैं करती सृजन, सर्वात्मिका जगदीश्वरी।।
आत्मास्वरूपा बुद्धि की, शुचिवृत्ति मम आवास है।
सुर-सम्पदा पाते, जिन्हें ऐसा सुदृढ़ विश्वास है।।७।।

ते देवा अब्रुवन्-नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ।।८।।

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्यामहेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः ।।९।।

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ।।१०।।

कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ।।११।।

महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात् ।।१२।।

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ।।१३।।

कामो योनिः कमला वज्रपाणि-
र्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च-
पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम् ।।१४।।

बोले सकल सुर-वृन्द, हे देवी! महादेवी !! नमन।
तव नित प्रणत, हे प्रकृति भद्रा ! हे शिवा देवी !! नमन ।। ८ ।।

निज कर्मफल की प्राप्ति-हित, दनु-दलनि ! हम आये शरण।
हे अग्नि-वर्णा ! दीप्तज्ञाना ! उज्ज्वला ! तुम को नमन ।। ९ ।।

तुम देव-स्पन्दित वैखरी स्वर, जीव-जग जो बोलते।
सुरधेनु सम सुख-दायिनी, बल-अन्नदा तुम भगवते ।।
वह वाग् देवी भगवती, सन्तुष्ट हो कर प्रकट हों।
सुस्तुति करें कर जोरि हम, देवी हमारे निकट हों ।। १० ।।

अजब्रह्म-पूजित, कालरात्री, महाकाली को नमन।
पुनि स्कन्द माता वैष्णवी, श्री महालक्ष्मी को नमन ।।
देवी सरस्वति पाप-हारिणि, शत-स्वरूपा को नमन।
ईशा अदिति उस दक्ष-कन्या, सत्वरूपा को नमन ।। ११ ।।

हे महालक्ष्मी ! ध्या रहे हम, सर्व शक्ति स्वरूपिणी !
निज ध्यान में हम को, अवस्थित कीजिए सद्रूपिणी ।। १२ ।।

हे दक्ष ! तव कन्या अदिति, आसन्न-प्रसवा जब हुई।
सुरगण अमर कल्याण-कर, उत्पन्न हो जग छवि छई ।। १३ ।।

शिवशक्ति भेद स्वरूपिणी, अज विष्णु शिव देवात्मिका।
लक्ष्मी सरस्वति गौरि रूपा, श्री सकल तत्वात्मिका ।।
सम्मिश्र शुद्ध अशुद्ध आराधन, त्रिपुर वर नायिका।
समरसीभूत विकल्प-शून्य, सुज्ञान-ज्योति प्रदायिका ।।
श्री जग-जननि सर्वात्मिका की, मूल विद्या ख्यात है।
यह पञ्चदशी सुमन्त्र, 'श्री विद्या' जगत विख्यात है ।। १४ ।।

एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या।
य एवं वेद स शोकं तरति ॥१५॥

नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः ॥ १६ ॥

सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः।
सैषा द्वादशादित्याः।
सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च।
सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः
सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा
ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी। सैषाप्रजापतीन्द्रमनवः।
सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि।
कलाकाष्ठादिकालरूपिणी।
तामहं प्रणौमि नित्यम्॥
पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्॥१७॥

वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्॥ १८॥

एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः॥ १९ ॥

श्री महा-विद्या देवि हैं, कुल विश्व की मोहनकरी।
परमात्म-शक्ति अतुल्य ये, जगदीश्वरी परमेश्वरी॥
सुरत्राण हित कर पाश अंकुश, बाण धनु धारण करें।
इस भाँति जो जन जानते, वे शोक-सागर से तरें॥१५॥

हे भगवती ! हे जगत-माता ! सर्व जग-पीड़ा हरो।
है नमन बारम्बार तव, सब भाँति माँ, रक्षा करो॥१६॥

जानो वही वसु अष्ट हैं, ये रुद्र ग्यारह देव हैं।
ये सोम पान-अपान कर्ता, सकल विश्वेदेव हैं॥
आदित्य द्वादश हैं वही, ये यक्ष किन्नर सिद्ध हैं।
हैं सकल असुर समाज, रज तम सत्व जगत प्रसिद्ध हैं॥
ये हैं प्रजापति इन्द्र मनु, अज विष्णु रुद्र स्वरूपिणी।
नक्षत्र गृह तारे, कला-काष्ठादि काल निरूपिणी॥
ये सर्व जग कल्याण कर्त्री, सकल मंगल दायिनी।
ये दोष रहिता हैं अनन्ता, भोग-मोक्ष-प्रदायिनी॥
हैं शरण लेने योग्य देवी, पाप नाशन हार हैं।
जय दायिनी शिवदा, शिवा को नमस्कार अपार हैं॥१७॥

आकाश 'ह' ईकार युत, 'र' अग्नि का प्रतिरूप है।
तिस पर अलंकृत अर्द्धचन्द्र, सुमध्य बिन्दु अनूप है॥
श्री देवि का एकाक्षरी, यह दिव्य बीज सुमन्त्र है।
कारज सकल यह सिद्ध करता, सर्व भाँति स्वतन्त्र है॥१८॥

चितवृत्ति जिनकी शुद्ध है, जो सर्व ज्ञान-निधान हैं।
इस 'ह्रीं' का सानन्द वे, करते यती नित ध्यान हैं॥१९॥

*वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम् ।
सूर्योऽवामश्रोत्रबिन्दुसंयुक्तष्टात्तृतीयक: ।
नारायणेन सम्मिश्रो वायुश्चाधरयुक् तत: ।
विच्चे नवार्णकोऽर्ण: स्यान्महदानन्ददायक: ।।२०।।

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रात: सूर्यसमप्रभाम् ।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् ।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे ।।२१।।

नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम् ।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम् ।।२२।।

यस्या: स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया ।
यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता ।
यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या ।

---

* इस श्लोक में नवार्ण मन्त्र का प्रतीकार्थ है ।
इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है :
"ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे"
इस महामन्त्र का भावार्थ निम्नलिखित है :

*ॐ वाङ्मय स्वर 'ऐं', माया 'ह्रीं' शक्ति अपार है।
पुनि ब्रह्मसू कन्दर्प-द्योतक, 'क्लीं' उसका सार है।।
'च' षष्ठ व्यञ्जन, वक्त्रवत आ' कार (ा) युत श्रृंगार है।
औ सूर्य 'म'पर बिन्दु(ं), दक्षिण-कर्ण-सरिस 'उ'कार(ु) है।।
'ड' वर्ण तृतिय ट-वर्ग का आकार (ा) नारायण लिये।
'य' वायु मस्तक पर युगल 'ए'कार(ै) को धारण किये।।
'विच्चे' नवार्ण सुमन्त्र शुभ, सम्पूर्ण उच्चारण कहा।
सायुज्य देता ब्रह्म का, यह मन्त्र सुख-दायक महा।।२०।।

जो बाल रवि-सम कान्तिमय, है हृदय-कमल विराजती।
कर पाश अंकुश वरद अभया, सौम्य मुद्रा साजती।।
त्रयलोचनी वह रक्तवसना, पूजते हम ध्यान धर।
सुरधेनु सम जो भक्त के, देती मनोरथ सिद्ध कर।।२१।।

हे अमित भव-भय नाश करनी, हे विकट संकट-हरी।
मेरा नमन है आपको, देवी शिवे ! करुणा-करी।।२२।।

अज विष्णु शिव नहिं जानते, जिस मातु रूप अनूप को।
तब नाम अज्ञेया धरा, उनके अचिन्त्य स्वरूप को।।
कहते अनन्ता नाम से, नहिं अन्त है जिनका कहीं।
उनको अलक्ष्या भी कहा, जब लक्ष्य कुछ दीखा नहीं।।

---

* हे महालक्ष्मी चित्स्वरूपा, सरस्वति सद्रूपिणी!
हे महाकाली चण्डिके! हे चिदानन्द स्वरूपिणी!!
हम ब्रह्मविद्या प्राप्ति हित, तव ध्यान हे माता! धरें।
खोलो अविद्या-ग्रन्थि अब, आवागमन से हम टरें।।

यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा।
एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका।
एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका।
अत एवोच्यते अज्ञेयानन्तालक्ष्याजैका नैकेति ।।२३।।

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ।।२४।।

तां दुर्गां दुर्गमां देवीं
दुराचारविघातिनीम् ।
नमामि भवभीतोऽहं
संसारार्णवतारिणीम् ।।२५।।

इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स
पञ्चाथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति ।
इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति-शतलक्षं
प्रजप्त्वापि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति।
शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।
दशवारं पठेद् यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः ।।२६।।

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति।
प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति।

हैं जो अजा, उत्पत्ति जिनकी ज्ञान सीमा से परे।
जो एक ही सर्वत्र हैं, बस नाम एका यों धरे।।
सजती अकेली जग-अखिल में, नाम नैका साजती।
यों अद्वितीया विविध-नामा, देवि जन-मन राजती।।२३।।

मन्त्रादि में बन मातृका, जो मूल अक्षर में बसें।
औ शून्य सब में साक्षिणी, बन ज्ञान शब्दों को कसें।।
वे सर्व ज्ञान समूह में, चिन्मय-अतीता बन रहें।
जिनसे न कुछ भी श्रेष्ठ, उनको लोक में दुर्गा कहें।।२४।।

वे देवि दुर्गम दुर्गमा, सब दुराचार निवारिणी।
वे अतुल दुर्विज्ञेय हैं, संसार-सागर-तारिणी।।
भव-भाव से भय-भीत मैं, करता नमन उनको सदा।
वे सर्व भव-भय-हारिणी, मंगलमयी हों सर्वदा।।२५।।

देवी अथर्व सु-शीर्ष का, करता पठन है जो सदा।
वह भक्त पाँचों शीर्ष का, फल प्राप्त करता सर्वदा।।
इस शीर्ष को जाने बिना, जो मूर्ति का स्थापन करे।
होती न अर्चा-सिद्धि, चाहे कोटि जप-साधन करे।।
शतनाम अष्टोत्तर, इसी की पुरश्चरणा विधि कहें।
दस बार कर पाठन इसे, जन पाप-निवृत हो रहें।।
उस महादेवी की कृपा से, ताप भव का सब टरे।
कर मुक्त पापों से सभी, वह मन मुदित मंगल भरे।।२६।।

सायं पठन करता दिवस के, पाप-फल सब नष्ट है।
हरता पठन शुभ प्रात का, निशि-कर्म-फल का कष्ट है।।

सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति।
निशीथे तुरीयसंध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति।
नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवतासांनिध्यं भवति।
प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति।

भौमाश्विन्यां महादेवीसंनिधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति।
स महामृत्युं तरति य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥

इति श्रीदेव्यथर्वशीर्षं
सम्पूर्णम्।

जो भक्त इसका दो समय, करता नियम से जाप है।
वह महामाया की कृपा से, सर्वदा निष्पाप है।।
जो मध्य-रात्रि तुरीय सन्ध्या, में करे इस जाप को।
पाता सहज ही वह उपासक, वाकसिद्धि-प्रताप को।।
निष्प्राण प्रतिमा में सदा, यह पाठ भरता प्राण है।
सान्निध्य दैवी प्राप्त होता, जीव-जग-कल्याण है।।

जो जन शिवा सम्मुख पठन, भौमी अमावश को करे।
नक्षत्र अश्विनि-योग हो, वह महामृत्यू से टरे।।
इस भाँति जो जन जानता, यह उपनिषद् का ज्ञान है।
वह मृत्यु-भय से मुक्त हो, पाता सतत उत्थान है।।

इस प्रकार श्री देव्यथर्वशीर्ष का पद्यानुवाद
सम्पूर्ण हुआ।

अथ प्राधानिकं रहस्यम्

राजोवाच

भगवन्नवतारा मे चण्डिकायास्त्वयोदिताः।
एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन् प्रधानं वक्तुमर्हसि॥१॥

आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज।
विधिना ब्रूहि सकलं यथावत्प्रणतस्य मे॥२॥

ऋषिरुवाच

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते।
भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं नराधिप॥३॥

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता॥४॥

मातुलुङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती।
नागं लिङ्गं च योनिं च बिभ्रती नृप मूर्धनि॥५॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा।
शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा॥६॥

शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी।
बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि॥७॥

सा भिन्नाञ्जनसंकाशा दंष्ट्राङ्कितवरानना।
विशाललोचना नारी बभूव तनुमध्यमा॥८॥

खड्गपात्रशिरःखेटैरलंकृतचतुर्भुजा।
कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि शिरःस्रजम्॥९॥

सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसी प्रमदोत्तमा।
नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः॥१०॥

प्राधानिक रहस्य

ब्रह्मन् ! कहे अवतार सब, श्री चण्डिका के आप ने।
उनका प्रकृति-प्राधान्य भी, करिए निरूपण, हे मुने।।१।।

द्विजवर ! मुझे कहिए यथावत, पूर्ण देवी साधना।
किसविध करूँ श्री देवि के, किस रूप की आराधना।।२।।

ऋषि ने कहा, अति गोप्य है, कहते न इसको हर कहीं।
पर तुम परम मम भक्त हो, तुम से छिपाऊँगा नहीं।।३।।

वे सर्व आद्या स्वयं संस्थित, गुणत्रयी परमेश्वरी।
जग-व्याप्त लक्ष्य-अलक्ष्य हैं, लक्ष्मी महा अखिलेश्वरी।।४।।

फल मातुलुङ्गक गदा खेटक, पात्र-मधु कर राजती।
श्री महालक्ष्मी नाग, योनि, सुलिंग मस्तक साजती।।५।।

वे तप्त कुन्दन-कान्ति-रूपा, स्वर्ण आभूषण धरें।
यह शून्य जग निज तेजमय, आलोक से पूरण करें।।६।।

जब महालक्ष्मी ने सकल जग, शून्य अवलोकित किया।
केवल तमोगुण भाव से, इक दिव्य तन प्रकटित किया।।७।।

वह रूप था इक नारि का, काजल-सरिस तन श्याम था।
मुख दाढ़ नेत्र विशाल शोभित, कर्श कटि द्युति-धाम था।।८।।

देवी चतुर्भुज खड्ग औ, मधु-पात्र शिर खेटक लिये।
नरमुण्ड माला वक्ष पर, कबन्ध कटि धारण किये।।९।।

कर जोरि बोली तामसी, मेरा नमन, माँ! लीजिए।
मम नाम क्या औ कर्म क्या, आदेश मुझको दीजिए।।१०।।

तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम्।
ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते।। ११।।

महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा।
निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया।। १२।।

इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः।
एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम्।। १३।।

तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप।
सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ।।१४।।

अक्षमालाङ्कुशधरा वीणापुस्तकधारिणी।
सा बभूव वरा नारी नामान्यस्यै च सा ददौ।।१५।।

महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती।
आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी।।१६।।

अथोवाच महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम्।
युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः।।१७।।

इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम्।
हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ।।१८।।

ब्रह्मन् विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम्।
श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम्।। १९।।

महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह।
एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते।।२०।।

नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम्।
जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम्।। २१।।

तब महालक्ष्मी ने कहा, उस तामसी तिय श्रेष्ठ को।
तव नाम देती हूँ शुभे, कहती सुकर्म यथेष्ट को।।११।।

माया-महा, काली-महा निद्रा महामारी क्षुधा।
तृष्णा तृषा पुनि एक-वीरा, काल-रात्रि दुरत्यया।।१२।।

ये सब तुम्हारे नाम हैं, जग कर्म-हित चरितार्थ को।
इनका पठन करि सुख लहें, नर जानि कर्म यथार्थ को।।१३।।

कह कर, नृपति ! यों कालि से, श्री ने धरा तन दूसरा।
शुचि सत्व गुण धर हो गई वह, चन्द्र आभा सम वरा।।१४।।

कर अक्षमाला, देवि अंकुश, वीण औ पुस्तक लिये।
उस श्रेष्ठ तिय के रूप को, वर नाम लक्ष्मी ने दिये।।१५।।

सुरधेनु ! आर्या ! वेदगर्भा ! महावाणी ! भारती।
विद्या-महा ! तव नाम, धीश्वरि ! वाक ! ब्राह्मि ! सरस्वती।।१६।।

फिर महालक्ष्मी ने कहे, काली सरस्वति से वचन।
निज रूप-गुण जैसे करो, तुम युग्म नर-नारी सृजन।।१७।।

यों कह स्वयं नर नारि, इक इक महालक्ष्मी ने रचे।
वे दिव्य मनहर रूप, निज-निज पद्म पर आसीन थे।।१८।।

ब्रह्मन् ! विरञ्चि ! विधे ! दिया नर हेतु धातः ! नाम को।
श्री ! लक्ष्मि ! कमला ! मातु ने, पदमा ! पुकारा वाम को।।१९।।

फिर महाकाली सरस्वति ने, जो युगल विरचित किये।
वृत्तान्त कहता हूँ सकल, क्या रूप-नाम उन्हें दिये।।२०।।

नर रक्तभुज तन सित मुकुट धर, नील गल शिख चन्द्रमा।
थी महाकाली के युगल में, गौर-वर्णा अङ्गना।।२१।।

स रुद्रः शंकरः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः ।
त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा ।। २२।।

सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरुषं नृप।
जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते ।। २३।।

विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः ।
उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ।। २४।।

एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे ।
चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ।। २५।।

ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मीर्नृप त्रयीम् ।
रुद्राय गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम् ।। २६।।

स्वरया सह सम्भूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत् ।
बिभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान् ।। २७।।

अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप ।
महाभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।। २८।।

पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः ।
संजहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ।। २९।।

महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी ।
निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत् ।। ३०।।

नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित् ।। ॐ ।। ३१ ।।

इति प्राधानिकं रहस्यं सम्पूर्णम्

नर को कपर्दी स्थाणु शंकर, रुद्र त्रयलोचन कहा।
विद्या त्रयी, तिय को स्वरा, सुरधेनु भाषा अक्षरा।।२२।।

राजन् ! महा श्री सरस्वति ने, जो युगल सर्जित किया।
इक गौर वर्णा नारि औ, नर श्याम तन प्रकटित किया।।२३।।

हृषिकेश विष्णु जनार्दन, नर वासुदेव-औ कृष्ण था।
गौरी उमा चण्डी सती, तिय सुन्दरी सुभगा शिवा।।२४।।

इसविध पुरुष-रूपा हुईं वे, नारि तीनों रूपसी।
जानें न अज्ञानी, समझते ज्ञानचक्षु-सुप्राप्त ही।।२५।।

फिर महालक्ष्मी ने, नृपति ! देवी त्रयी विधि को वरी।
वरदा सुगौरी रुद्र को, हरि को वरण लक्ष्मी करी।।२६।।

सर्जित किया ब्रह्माण्ड को, विधि ने सरस्वति-युक्त हो।
औ रुद्र ने भेदन किया, उसको शिवा-संयुक्त हो।।२७।।

राजन् ! उसी ब्रह्माण्ड में, चर-अचर जीव-समूह की।
रचना हुई जग पञ्चभूता, कार्य-कारण व्यूह की।।२८।।

तब संग लक्ष्मी विष्णु ने, जग-पुष्टि औ पालन किया।
उस का शिवा-शिव ने, प्रलय के काल संहारण किया।।२९।।

वे महालक्ष्मी, हे नृपति ! हैं सर्व सत्व अधीश्वरी।
साकार निर्-आकार, देवी विविध नामा ईश्वरी।।३०।।

सत् ज्ञान चित् माया-महा, सब रूप आराधन करें।
कर निखिल नामान्तर निरूपण, ध्यान श्रीमाँ का धरें।।३१।।

इस प्रकार प्राधानिक रहस्य का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।।ॐ।।

अथ वैकृतिकं रहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता।
सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ॥ १ ॥

योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा।
मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः ॥ २ ॥

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥ ३ ॥

स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप।
रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः ॥ ४ ॥

खड्गबाणगदाशूलचक्रशङ्खभुशुण्डिभृत् ।
परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ ॥ ५ ॥

एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया।
आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥ ६ ॥

सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥ ७ ॥

श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला।
रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुरुन्मदा ॥ ८ ॥

सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा।
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी ॥ ९ ॥

वैकृतिक रहस्य

ऋषि ने कहा-शुभ सत्व रूपा, महा लक्ष्मि त्रिगुण-मयी।
तामसी आदि स्वरूप-त्रय जो, पूर्व बतलायी गयी।।
शर्वा सु-भद्रा चण्डिका, दुर्गा भवानी भगवती।
विख्यात हैं वे ही जगत में, विविधरूपा सतमती।। १।।

हरि योगनिद्रा महाकाली, देवि हैं तम-गुणमयी।
मधु और कैटभ नाश-हित, अजब्रह्म कर पूजी गयी।। २।।

वह देवि दशमुख दशपगा, औ दश भुजा-विस्तार है।
काजल सरिस तन श्याम रँग, पुनि नयन तीस कतार है।। ३।।

द्युत-दशन-दंष्ट्रा देविश्री, यद्यपि भयंकर रूप है।
पै कान्ति श्री सौभाग्य रूप, प्रदायिनी वह, भूप! है।। ४।।

करवाल शर गद शूल, निज कर चक्र शंख सु-धारिणी।
भूशुण्डि परिघ सु-चाप, शोणित-स्रवित मस्तक धारिणी।। ५।।

ऐसी, नृपति ! हैं विष्णु-माया, महाकालि दुरत्यया।
पूजित हुईं वे भक्त-वश, करती जगत पूरणतया।। ६।।

देवाङ्ग-उदिता महालक्ष्मी, दिव्य कान्ति स्वरूपिणी।
वे देवि ही त्रिगुणा प्रकृति हैं, महिष दैत्य-विमर्दिनी।।७।।

वे गौर मुख श्यामल भुजा, कुच श्वेत अरुणिम कटि-पदा।
नीलाभ जंघा-पिंडुलियाँ, हैं देवि शोभित उन्मदा।। ८।।

बहु रंग-पट माला-सजित, कटि अग्रभाग सुहावना।
सौभाग्य-कान्ति स्वरूप अद्भुत, अङ्गराग लुभावना।। ९।।

अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् ॥ १० ॥

अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा।
चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः ॥ ११ ॥

शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः।
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ॥ १२ ॥

सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप।
पूजयेत्सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥ १३ ॥

गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया।
साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ १४ ॥

दधौ चाष्टभुजा बाणमुसले शूलचक्रभृत्।
शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप ॥ १५ ॥

एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति।
निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ १६ ॥

इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्तीनां तव पार्थिव।
उपासनं जगन्मातुः पृथगासां निशामय ॥ १७ ॥

महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती।
दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम् ॥ १८ ॥

वे भुज-सहस्रा देवि, पूजें अष्टदश भुज मानकर।
पुनि शस्त्र कर दक्षिण अध: से, वाम क्रमश: जानकर।। १०।।

वे अक्षमाला पद्म शर, पुनि खड्ग वज्र गदाधरी।
कर चक्र शूल परशु पयोधिज, और घण्टा पाशुरी।। ११।।

वर शक्ति दण्डक ढाल धनु, मधु-पान-पात्र कमण्डला।
आयुध विविध कर धारि, देवी पद्म-आसन-राजिता।। १२।।

श्री महालक्ष्मी सर्व सुरमयि, ईश्वरी सबकी वही।
जो पूजता सब लोक पाता, नृप! सकल सुर-राज भी।। १३।।

जो सत्व गुण आधार, गौरी देह से प्रगटी सती।
है शुम्भ दैत्य-सँहारिणी, साक्षात देवि सरस्वती।। १४।।

वे अष्टभुज क्रमश: महीपति ! बाण मूशल कर लिये।
पुनि शूल चक्र सु-शंख घण्टा, हल धनुष धारण किये।। १५।।

देवी सरस्वति शुम्भ दलनी, औ निशुम्भ विदारिणी।
सह-भक्ति पूजित हैं सदा, सर्वज्ञता गुण-कारिणी।। १६।।

इसविध नृपति! तुम से कहा, त्रयमूर्ति देवि स्वरूप को।
अब महालक्ष्मी आदि के, सुनिए उपासन-रूप को।। १७।।

पूजन समय श्री महालक्ष्मी, मध्य में स्थापित करें।
क्रमश: महाकाली सरस्वति, दाहिने बायें धरें।।
पुनि पृष्ठ में त्रय युगल, देवी-देव का शुभ स्थान है।
श्री महालक्ष्मी-अर्चना का, यही श्रेष्ठ विधान है।। १८।।

विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे।
वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम्॥ १९॥

अष्टादशभुजा मध्ये वामे चास्या दशानना।
दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत्॥ २०॥

अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या नराधिप।
दशानना चाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा॥ २१॥
कालमृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये।
यदा चाष्टभुजा पूज्या शुम्भासुरनिबर्हिणी॥ २२॥
नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्रविनायकौ।
नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत्॥ २३॥

अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः।
अष्टादशभुजा चैषा पूज्या महिषमर्दिनी॥ २४॥

महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती।
ईश्वरी पुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी॥ २५॥

महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः।
पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम्॥ २६॥

फिर पृष्ठ पंक्ति सुमध्य में, पूजें विरञ्चि-सरस्वती।
दाहिने गौरी-रुद्र, बायें लक्ष्मि श्री कमला-पती॥
श्री महालक्ष्मी आदि, तीनों देवियों के अग्र ही।
जिन देवियों को पूजना है, वे सभी इसविध कही॥१९॥

लक्ष्मी-महा के अग्र लक्ष्मी, अष्टदश भुज शोभती।
दिशि वाम दशमुख कालि, दक्षिण अष्टबाहु सरस्वती॥२०॥

केवल करें यदि लक्ष्मि श्री, भुज अष्टदश की अर्चना।
दश-आनना या अष्टभुज की, पृथक-पृथक उपासना॥
कर काल दक्षिण, मृत्यु वाम विभाग में संस्थापना।
पुनि गण-अरिष्ट-प्रशान्ति हित, विधिवत करें अभ्यर्थना॥
जब शुम्भ-दलनी अष्टभुज, श्री देवि का पूजन करें।
नव शक्ति, दक्षिण रुद्र, वाम गणेश का अर्चन करें॥
'ॐ नमो देव्यै' स्तोत्र से, लक्ष्मीमहा पूजन करें।
श्री देवि के शुभ रूप का, एकाग्र-मन चिन्तन धरें॥२१-२३॥

त्रयरूप-पूजन में कहे, जो स्तोत्र-मन्त्र यदा-यदा।
उपयोग उनका ही करें, श्री देवि-अर्चन में सदा॥
श्री महालक्ष्मि विशिष्ट पूज्या, अष्टदश भुज धारिणी।
हैं तीन रूपों में वही स्थित, महिष-दैत्य-विदारिणी॥२४॥

वे महालक्ष्मी सर्व जग की, पाप-पुण्य अधीश्वरी।
वे ही महाकाली सरस्वति, सर्व-लोक-महेश्वरी॥२५॥

स्वामी बने जग का, भजे जो महिष-हन्त्री चण्डिका।
अतएव पूजें भक्त वत्सल, जगद्धात्री चण्डिका॥२६॥

अर्घ्यादिभिरलंकारैर्गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥ २७ ॥

रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप ।
(बलिमांसादिपूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता ॥
तेषां किल सुरामांसैर्नोक्ता पूजा नृप क्वचित् ।)
प्रणामाचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥२८॥

सकर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्तिभावसमन्वितैः ।
वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम् ॥ २९ ॥

पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया ।
दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥ ३० ॥

वाहनं पूजयेद्देव्या धृतं येन चराचरम् ।
कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्रमानसः ॥ ३१ ॥
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः ।
एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥ ३२ ॥

चरितार्धं तु न जपेज्जपञ्छिद्रमवाप्नुयात् ।
प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥ ३३ ॥
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ।
प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं तिलसर्पिषा ॥ ३४ ॥

जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः ।
भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत्सुसमाहितः ॥ ३५ ॥

शुचि धूप दीप सुगन्ध, नाना खाद्ययुत नैवेद्य से।
औ पुष्प अक्षत द्रव्य से, आभूषणों से अर्घ्य से ॥२७॥

फिर मांस मदिरा रक्त-बलि भी कहा, नृपति ! विधान है।
(पै पूर्ण ब्रह्म-समाज को, वर्जित किया, मतिमान! है ॥
उनके निमित इस भाँति, पूजन का न कहीं प्रमाण है।)
चन्दन सुवासित शुद्ध जल, औ नमन भाव प्रधान है ॥२८॥

कर्पूर नागर पत्र-सह, अति भक्ति श्रद्धा-भाव से।
पूजें सदा श्री देवि को, कर जोरि नम्र स्वभाव से ॥
फिर वाम देवि समक्ष पूजें, महिष आसुर दैत्य को।
शिर-हीन जिसने पा लिया, श्री अम्बिका-सायुज्य को ॥
औ दाहिने श्री देवि-वाहन, सिंह का पूजन करें।
सम्पूर्ण धर्म प्रतीक जो, कुल चर-अचर धारण करें ॥
इसके अनन्तर देवि की स्तुति, दत्तचित्त सुजन करे।
तीनों चरित कर पाठ, पुनि कृतकृत्य हो वन्दन करे ॥
यदि एक चरित सु-पाठ से, साधक स्तवन करना चहे।
मध्यम चरित पाठन करे, उत्तर-प्रथम को तजि रहे ॥२९-३२॥

पाठन अधूरे चरित का, वर्जित किया है हर कहीं।
खण्डित करे जो पाठ, उसका फल कभी मिलता नहीं ॥
शुभ नमस्कार प्रदक्षिणा, पश्चात आलस बिन करे।
नत भाल फिर कर जोरि, त्रुटियों हित क्षमा-याचन करे ॥
दे खीर तिल घृत मिश्र आहुति, भक्त इक-इक श्लोक से।
जो मन्त्र रूपा हैं सुपूरित, ज्ञान के आलोक से ॥३३-३४॥

या स्तोत्र मन्त्रों से सुयोजित, चण्डिकार्थ हवन करे।
फिर नाम-पद उच्चार कर, एकाग्र चित पूजन करे ॥३५॥

प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः प्रणम्यारोप्य चात्मनि।
सुचिरं भावयेदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत्॥ ३६॥

एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम्।
भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात्॥३७॥

यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम्।
भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्परमेश्वरी॥३८॥

तस्मात्पूजय भूपाल सर्वलोकमहेश्वरीम्।
यथोक्तेन विधानेन चण्डिकां सुखमाप्स्यसि॥ ३९॥

इति वैकृतिकं रहस्यं सम्पूर्णम्॥

इन्द्रिय सुवश करि मन प्रणत, फिर जोरि कर सविनय रहे।
सर्वेश्वरी हिय धरि सतत, हो चिर-मनन तन्मय रहे।।३६।।

इसविध रहे जो भक्तिसह, परमेश्वरी को पूज नर।
श्री देवि का सायुज्य पाता, फल मनोरथ भोग कर।।३७।।

जो भक्तवत्सल चण्डिका को, पूजता नहिं नर सदा।
देवी कृपा बिन पुण्य उसके, भस्म होते सर्वदा।।३८।।

अतएव राजन् ! देवि है वह सर्वलोक महेश्वरी।
सुख प्राप्त होगा, पूजिए विधिवत सदा देवेश्वरी।।३९।।

इस प्रकार वैकृतिक रहस्य का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।।

अथ मूर्तिरहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥ १ ॥

कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिकनकाम्बरा।
देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा ॥ २ ॥

कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलंकृतचतुर्भुजा ।
इन्दिरा कमला लक्ष्मीः सा श्री रुक्माम्बुजासना ॥ ३ ॥

या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयानघ।
तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु सर्वभयापहम् ॥ ४ ॥

रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा।
रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ॥ ५ ॥

रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका।
पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम् ॥ ६ ॥

वसुधेव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी।
दीर्घौ लम्बावतिस्थूलौ तावतीव मनोहरौ ॥ ७ ॥

कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी।
भक्तान् सम्पाययेद्देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥ ८ ॥

खड्गं पात्रं च मुसलं लाङ्गलं च बिभर्ति सा।
आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगेश्वरीति च ॥ ९ ॥

मूर्ति रहस्य

ऋषिराज बोले, हे नृपति ! वे देवि नन्दा नाम धर।
श्री नन्द-गृह उत्पन्न होंगी, दिव्यरूप ललाम धर।।
अति भक्तिसह पूजन-स्तवन कर, ध्यान जन उनका धरे।
देवी मुदित हो लोकत्रय, निज भक्त के वश में करे।।१।।

उस देवि की श्री अंग-छवि, है स्वर्ण-तुल्य प्रभामयी।
काञ्चन वसन, तन कनक-भूषण, हेमवत आभामयी।।२।।

कर पद्म अंकुश पाश उदधिज, हैं चतुर्भुज अङ्गना।
इन्दिरा कमला लक्ष्मि श्री, वे रुक्म-अम्बुज-आसना।।३।।

हे नृप अनघ ! पहले कहा जो, रक्तदन्ती नाम था।
उस देवि का अब रूप सुनिए, जो सकल भय टारता।।४।।

वे रक्त-वसना रक्त-वर्णा, रक्त अङ्ग-विभूषणा।
पुनि रक्तनयना रक्त-आयुध, रक्त कुन्तल भीषणा।।५।।

वे रक्तदन्ती रक्त-रसना, तीक्ष्ण नख रँग रक्त-वर।
पति-पत्नि के अनुरागवत, हैं स्नेह रखती भक्त पर।।६।।

वसुधा समान विशाल तन, स्तन-युगल मेरु-स्वरूप हैं।
जो लम्ब स्थूल सुदीर्घ आकृति, अति मनोहर रूप हैं।।७।।

कर्कश उभय, कमनीय पै, आनन्द-उदधि-समान हैं।
सुरधेनु ज्यों निज भक्तजन को, वे कराती पान हैं।।८।।

भुज चार खड्ग सुपात्र-मधु, हल मूसलायुध हाथ हैं।
वे रक्त-चामुण्डा तथा, योगेश्वरी प्रख्यात हैं।।९।।

अनया व्याप्तमखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
इमां यः पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम्॥ १०॥

अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम्।
तं सा परिचरेद्देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना॥ ११॥

शाकम्भरी नीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना।
गम्भीरनाभिस्त्रिवलीविभूषिततनूदरी॥ १२॥

सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनी।
मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया॥ १३॥

पुष्पपल्लवमूलादिफलाढ्यं शाकसञ्चयम्।
काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृण्मृत्युभयापहम्॥ १४॥

कार्मुकं च स्फुरत्कान्ति बिभ्रती परमेश्वरी।
शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता॥ १५॥

विशोका दुष्टदमनी शमनी दुरितापदाम्।
उमा गौरी सती चण्डी कालिका सा च पार्वती॥ १६॥

शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन्।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम्॥ १७॥

भीमापि नीलवर्णा सा दंष्ट्रादशनभासुरा।
विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा॥ १८॥

चन्द्रहासं च डमरुं शिरः पात्रं च बिभ्रती।
एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता॥ १९॥

तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत्।
चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता॥ २०॥

इस चर-अचर सम्पूर्ण जग में, व्याप्त देवि-प्रताप ही।
जो भक्तिसह पूजे उन्हें, जग-व्याप्त होता आप भी।। १० ।।

जो देवि-श्रीविग्रह स्तवन, श्रद्धा सहित प्रतिदिन करे।
देवी उसे अति प्रीति-वश, प्रिय अङ्गना-सम परिचरे।। ११ ।।

शाकम्भरी हैं नील वर्णा, नील पंकज-लोचना।
त्रिवली लसत सूक्ष्मोदरी, गम्भीर नाभि शुभाङ्गना।।१२।।

कुच युगल वृत्त सुडौल, कर्कश घन उतुङ्ग सु-धारिणी।
सरसिज निवासिनि पद्म कर, शर पुञ्ज मुष्टिक धारिणी।। १३ ।।

वह शाक-पत्रक फूल-फल, मूलादि पुञ्जरि कर धरे।
देती मनोरथ रस-विविध, तृष्णा-क्षुधा भव-भय हरे।।१४।।

उद्दीप्त धनु कर धारती, देवी परम परमेश्वरी।
शाकम्भरी शत्ताक्षि दुर्गा, हैं वही मङ्गल-करी।।१५।।

वे शोक रहिता दुष्ट-दमनी, अघ-विपत्ति निकन्दिनी।
चण्डी उमा गौरी सती, कालिका हिमगिरि-नन्दिनी।।१६।।

शाकम्भरी-स्तुति ध्यान पूजन, जप-नमन जो नित करे।
वह अन्न-जल अमृत-सुफल, अक्षय सदा अर्जित करे।।१७।।

श्री देवि भीमा नील तन, द्युत-दशन-दंष्ट्र प्रभासिनी।
तिय रूप नेत्र-विशाल-छवि, घन वृत पयोधर भासिनी।।१८।।

कर चन्द्रहासा-खड्ग डमरू, मुण्ड मधु-भाजन गहे।
जग एकवीरा, कालरात्री, कामदा उसको कहे।।१९।।

भ्रामरी देवी कान्त-अद्भुत, विविध वर्ण मनोहरा।
निज-तेज-भयकर, अंग चित्र-विचित्र आभूषण धरा।।२०।।

चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते।
इत्येता मूर्तयो देव्या याः ख्याता वसुधाधिप ।। २१ ।।

जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः।
इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित्त्वया ।। २२ ।।

व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामभीष्टफलदायकम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ।। २३ ।।

सप्तजन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि ।
पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।। २४ ।।

देव्या ध्यानं मया ख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं महत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम् ।। २५ ।।

(एतस्यास्त्वं प्रसादेन सर्वमान्यो भविष्यसि।
सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत्।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम्।)

इति मूर्तिरहस्यं सम्पूर्णम् ।।

वे चित्र भ्रमर-सु-पाणि, जग में महामारी ख्यात हैं।
इस भाँति, भूपति ! चण्डिका-प्रतिमूर्ति ये विख्यात हैं ॥ २१॥

यह कीर्तन सुरधेनु ज्यों, मन कामना पूरण करे।
है परम गोप्य रहस्य यह, नहिं अन्य को वर्णन करे ॥२२॥

नित पाठ मूर्ति रहस्य का, है फल-मनोरथ-साधना।
अतएव करिए यत्नसह, श्री देवि-जप-आराधना ॥२३॥

शुभ सप्तशती-सुमन्त्र-पाठन, भक्ति-युत जो जन करे।
सत-जन्म-पातक ब्रह्म-घाती, सर्व पापों से तरे ॥२४॥

सायास यों मैंने कहा, इस परम गोप्य रहस्य को।
वाञ्छित विविध जो कामना, करता सुलभ्य मनुष्य को ॥ २५॥

(श्री देवि की आराधना कर, फल मनोरथ पाओगे।
देवी कृपा से, नृपति ! जग में सर्वमान्य कहाओगे॥
श्री देवि सर्व-स्वरूप-मय, औ देवि-मय संसार है।
उस विश्व-ईश्वरि-रूप को, मम नमन बारम्बार है॥)

इस प्रकार मूर्ति रहस्य का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ॥

क्षमा-प्रार्थना

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि ।।१।।

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ।।२।।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ।।३।।

अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत्।
यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः ।।४।।

सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके।
इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु ।।५।।

अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ।।६।।

कामेश्वरि जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि ।।७।।

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ।।८।।

।। श्रीदुर्गार्पणमस्तु ।।

क्षमा प्रार्थना

मुझसे सहस अपराध होते, निशि-दिवस परमेश्वरी।
निज दास जानि क्षमा करो, तुम हो अतुल करुणाकरी।।१।।

आह्वान विधि जानूँ न जानूँ मैं विसर्जन-योजना।
परमेश्वरी करदो क्षमा, जानूँ न विधिवत-अर्चना।।२।।

यह मन्त्र-क्रिया-विहीन औ, बिन भक्ति जो पूजा करी।
वह तव कृपा से पूर्ण हो, हे देवि! हे देवेश्वरी।।३।।

कर सैकड़ों अपराध, आ तव शरण, जगदम्बा कहे।
ब्रह्मादि सुर-गण जो न पायें, सो सुगति वह जन लहे।।४।।

हूँ पातकी, पै शरण तव, अब आ गया, जगदम्बिके!
मैं हूँ दया का पात्र, इच्छा पर तुम्हारी, अम्बिके।।५।।

अज्ञान भ्रम औ भूल से, यदि हो कहीं घट-बढ़ करी।
करके क्षमा रहिए सदा, मुझपर मुदित परमेश्वरी।।६।।

हे सत्त-चित-आनन्द रूपा! जगन्माँ कामेश्वरी।
पूजा सप्रेम सकारि मम, हर्षित रहो परमेश्वरी।।७।।

तुम गुप्त-तम की रक्षिणी हो, तव कृपा, देवेश्वरी।
हो प्राप्त मुझ को सिद्धि, अर्पित जप गहो परमेश्वरी।।८।।

इस प्रकार क्षमा प्रार्थना का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।

श्रीदुर्गामानस-पूजा

उद्यच्चन्दनकुङ्कुमारुणपयोधाराभिराप्लावितां
नानानर्घ्यमणिप्रवालघटितां दत्तां गृहाणाम्बिके।
आमृष्टां सुरसुन्दरीभिरभितो हस्ताम्बुजैर्भक्तितो
मातः सुन्दरि भक्तकल्पलतिके श्रीपादुकामादरात्॥ १॥

देवेन्द्रादिभिरर्चितं सुरगणैरादाय सिंहासनं
चञ्चत्काञ्चनसंचयाभिरचितं चारुप्रभाभास्वरम्।
एतच्चम्पककेतकीपरिमलं तैलं महानिर्मलं
गन्धोद्वर्तनमादरेण तरुणीदत्तं गृहाणाम्बिके॥ २॥

पश्चाद्देवि गृहाण शम्भुगृहिणि श्रीसुन्दरि प्रायशो
गन्धद्रव्यसमूहनिर्भरतरं धात्रीफलं निर्मलम्।
तत्केशान् परिशोध्य कङ्कतिकया मन्दाकिनीस्रोतसि
स्नात्वा प्रोज्ज्वलगन्धकं भवतु हे श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे॥ ३॥

सुराधिपतिकामिनीकरसरोजनालीधृतां
सचन्दनसकुङ्कुमागुरुभरेण विभ्राजिताम्।
महापरिमलोज्ज्वलां सरसशुद्धकस्तूरिकां
गृहाण वरदायिनि त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे॥ ४॥

श्री दुर्गामानस-पूजा

हे त्रिपुर सुन्दरि माँ ! सदा तुम भक्त जन-मन-प्राण हो।
उनके हृदय की कामना हित कल्प-लता समान हो।।
हैं पादुका सादर समर्पित, धार लो करुणामयी!
ये विमल चन्दन युक्त, कुंकुम-नीर से धोयी गयी।।
बहुमूल्य मणि-विद्रुम विमण्डित, कर इन्हें निर्मित किया।
सुर-नारियों ने भक्तिसह, धो-पोंछ, कर पावन, दिया।। १।।

माँ ! देवगण ने आपके हित, दिव्य सिंहासन दिया।
है यह, जिसे इन्द्रादिकों ने, सर्वदा पूजन किया।।
निज कान्ति से दैदीप्य, कञ्चन राशिसह निर्मित हुआ।
आरूढ़ हों, यह निज प्रभा, अति रम्य आभासित हुआ।।
केतकी चम्पा सुरभियुत, शुचि तैल, माँ ! स्वीकारिये।
उबटन सुवासित देवियाँ, सेवा निमित सादर लिये।। २।।

इसके अनन्तर, देवि ! धात्री फल विमलतम लीजिये।
ये गन्ध-द्रव्य-समूह के, संसर्ग से सुरभित किये।।
परिशोध कर इनसे करें, विन्यास केश-वितान को।
कर कंघिका, शुचि गंग-जल में कीजिए शुभ स्नान को।।
सौरभ रुचिर तब लीजिए, जो तन-विमल प्रमुदित करे।
मन आपका यह, सुन्दरी ! आनन्द से पुलकित करे।। ३।।

पावन सरस कस्तूरिका, वरदायिनी ! यह लीजिए।
कर धर स्वयं इन्द्राणि, प्रस्तुति हेतु है आगे किए।।
चन्दन अगरु कुंकुम सुमिश्रित, यह परम शोभित हुई।
हे धन प्रदायिनि ! विविध गन्धा रूप यह सुरभित हुई।। ४।।

गन्धर्वामरकिन्नरप्रियतमासंतानहस्ताम्बुज-
प्रस्तारैर्ध्रियमाणमुत्तमतरं काश्मीरजापिञ्जरम्।
मातर्भास्वरभानुमण्डललसत्कान्तिप्रदानोज्ज्वलं
चैतन्निर्मलमातनोतु वसनं श्रीसुन्दरि त्वन्मुदम्॥५॥

स्वर्णाकल्पितकुण्डले श्रुतियुगे हस्ताम्बुजे मुद्रिका
मध्ये सारसना नितम्बफलके मञ्जीरमङ्घ्रिद्वये।
हारो वक्षसि कङ्कणौ क्वणरणत्कारौ करद्वन्द्वके
विन्यस्तं मुकुटं शिरस्यनुदिनं दत्तोन्मदं स्तूयताम्॥६॥

ग्रीवायां धृतकान्तिकान्तपटलं ग्रैवेयकं सुन्दरं
सिन्दूरं विलसल्ललाटफलके सौन्दर्यमुद्राधरम्।
राजत्कज्जलमुज्ज्वलोत्पलदलश्रीमोचने लोचने
तद्दिव्यौषधिनिर्मितं रचयतु श्रीशाम्भवि श्रीप्रदे॥७॥

अमन्दतरमन्दरोन्मथितदुग्धसिन्धूद्भवं
निशाकरकरोपमं त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे।
गृहाण मुखमीक्षितुं मुकुरबिम्बमाविद्रुमै-
र्विनिर्मितमघच्छिदे रतिकराम्बुजस्थायिनम्॥८॥

कस्तूरीद्रवचन्दनागुरुसुधाधाराभिराप्लावितं
चञ्चच्चम्पकपाटलादिसुरभिद्रव्यैः सुगन्धीकृतम्।
देवस्त्रीगणमस्तकस्थितमहारत्नादिकुम्भव्रजै-
रम्भः शाम्भवि संभ्रमेण विमलं दत्तं गृहाणाम्बिके॥९॥

कह्लारोत्पलनागकेसरसरोजाख्यावलीमालती-
मल्लीकैरवकेतकादिकुसुमै रक्ताश्वमारादिभिः।
पुष्पैर्माल्यभरेण वै सुरभिणा नानारसस्रोतसा
ताम्राम्भोजनिवासिनीं भगवतीं श्रीचण्डिकां पूजये॥१०॥

उत्तम परम निर्मल वसन, तव हर्ष-वर्द्धन हेतु, माँ !
गन्धर्व सुर किन्नर प्रिया, लायीं समर्पण हेतु, माँ !!
यह शुद्ध केशर में रँगा, अति स्वच्छ पीताम्बर रहा।
है कान्ति जिस की, भानु-मण्डल तेज सम शोभित महा ।।५।।

तव युगल कर्णों में, कनक-कुण्डल सदा शोभित हुए।
कर मुद्रिका, कटि करधनी, मञ्जीर पद मुखरित हुए।।
उर पर सुशोभित हार, भुज मणिबन्ध कंगन खनकते।
शिर पर मुकुट अति दिव्य छवि, आनन्द-घन हिय उमगते।। ६ ।।

धनदायिनी ! निज ग्रीव उज्ज्वल, कान्त हँसली धारिये।
औ भाल मध्य सुहाग-सेंन्दुर-बिन्दु निज कर कारिये।।
दल पद्म को लज्जित करें, उन नयन काजल सारिये।
यह दिव्य औषध-योग से, निर्मित किया, हे शिवप्रिये।।७।।

निज मुख निहारन हेतु, माँ ! दर्पण ग्रहण यह कीजिए।
कर-कञ्ज में जिसको स्वयं रति, है खड़ी प्रस्तुत लिए।।
चहुँ ओर जड़ित-प्रबाल यह, शशि-कान्ति सम शोभित हुआ।
मन्दर-मथनि से क्षीरनिधि को, जब मथा, प्रकटित हुआ।।८।।

देवाङ्गनाएँ रत्न-कलशों में, विमल जल दे रही।
करिए ग्रहण, हे शाम्भवी ! तव हेतु लायी शीघ्र ही।।
यह नीर चम्पक पाटलादिक, सुरभि-सह भावित किया।
चन्दन अगरु कस्तूरिका रस, औ सुधा-प्लावित किया।।९।।

कह्लार उत्पल नागकेसर, कमल मल्लकि मालती।
ले सब सुगन्धित पुष्प, अरुण कनेर कुमुदिनि केतकी।।
पुनि गूँथ माला संग ले, रस धार विविध सुवासिता।
मैं पूजता हूँ, ताम्र-अम्बुज-वासिनी, श्री अम्बिका।। १० ।।

मांसीगुग्गुलचन्दनागुरुरज: कर्पूरशैलेयजै-
मर्ध्वीकै: सह कुङ्कुमै: सुरचितै: सर्पिर्भिरामिश्रितै: ।
सौरभ्यस्थितिमन्दिरे मणिमये पात्रे भवेत् प्रीतये
धूपोऽयं सुरकामिनीविरचित: श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥ ११ ॥

घृतद्रवपरिस्फुरद्रुचिररत्नयष्ट्यान्वितो
महातिमिरनाशन: सुरनितम्बिनीनिर्मित: ।
सुवर्णचषकस्थित: सघनसारवत्यान्वित-
स्तव त्रिपुरसुन्दरि स्फुरति देवि दीपो मुदे ॥ १२ ॥

जातीसौरभनिर्भरं रुचिकरं शाल्योदनं निर्मलं
युक्तं हिङ्गुमरीचजीरसुरभिद्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनै: ।
पक्वान्नेन सपायसेन मधुना दध्याज्यसम्मिश्रितं
नैवेद्यं सुरकामिनीविरचितं श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥ १३ ॥

लवङ्गकलिकोज्ज्वलं बहुलनागवल्लीदलं
सजातिफलकोमलं सघनसारपूगीफलम् ।
सुधामधुरिमाकुलं रुचिररत्नपात्रस्थितं
गृहाण मुखपङ्कजे स्फुरितमम्ब ताम्बूलकम् ॥ १४ ॥

शरत्प्रभवचन्द्रम: स्फुरितचन्द्रिकासुन्दरं
गलत्सुरतरङ्गिणीललितमौक्तिकाडम्बरम् ।
गृहाण नवकाञ्चनप्रभवदण्डखण्डोज्ज्वलं
महात्रिपुरसुन्दरि प्रकटमातपत्रं महत् ॥ १५ ॥

मातस्त्वन्मुदमातनोतु सुभगस्त्रीभि: सदाऽऽन्दोलितं
शुभ्रं चामरमिन्दुकुन्दसदृशं प्रस्वेददु:खापहम् ।
सद्योऽगस्त्यवसिष्ठनारदशुकव्यासादिवाल्मीकिभि:
स्वे चित्ते क्रियमाण एव कुरुतां शर्माणि वेदध्वनि: ॥ १६ ॥

गुग्गुल अगरु चन्दन शिलाजतु, घृत मधू कर्पूर भी।
कुंकुम जटामासी सहित, मिश्रित किये विधिवत सभी।।
यह देव-वधुओं ने स्वयं, शुचि धूप जो निर्मित किया।
तव तुष्टि हिय-आमोद हित, रख रत्नमय सौरभ दिया।। ११ ।।

हे त्रिपुर सुन्दरि ! दीप जो, घृत मय प्रकाशित हो रहा।
कर्पूर-वर्ति सुवर्ण दीयट, रत्न-यष्टिक-मय महा।।
सुर-नारियों ने मिल इसे, निर्मित किया, जगदम्बिके !
यह तम-सघन-हारी, करे तव हर्ष-वर्द्धन, अम्बिके।। १२ ।।

हे चण्डिके ! तव मोद-हित, नैवेद्य यह प्रस्तुत किया।
है शालि रोचक भात, जाती-सुरभि से संयुत किया।।
सुर-वधु सकल ने मरिच-जीरक, हिंगु से संस्कृत किया।
व्यञ्जन विविध पकवान खीर, सु-मेल मधु दधि घृत किया।। १३ ।।

माँ ! रत्नमय शुचि पात्र में, ताम्बूल दिव्य ग्रहण करें।
है लवँग-कलिका-बिन्ध, मुख-अरविन्द में अपने धरें।।
इसमें अनेकों नाग-वल्लरि-पत्र संग प्रयुक्त हैं।
कर्पूर पूगीफल जवित्री, मृदु सुधा संयुक्त हैं।।१४।।

अपनाइए, तव सामने, माँ ! छत्र प्रगटा भव्य है।
जो शरद-हिमकर-चाँदनी सम, चटक मनहर दिव्य है।।
इस स्वर्ण-दण्डी छत्र पर, यों झूलती मणि झालरें।
सुर-सरित की जलधार ज्यों, गिरिखण्ड से भू पर झरें।।१५।।

माँ ! तिय सुभग नित हैं डुलाती, स्वेद-आतप जो हरे।
कुन्देन्दु सम शोभित चँवर वह, हर्ष तव वर्द्धन करे।।
शुक व्यास नारद आदि जो-जो वेद मन्त्र विचारते।
आनँद करे उनकी, मनो संकल्प-ध्वनि हिय आप के।। १६ ।।

स्वर्गाङ्गणे वेणुमृदङ्गशङ्ख
भेरीनिनादैरुपगीयमाना ।
कोलाहलैराकलिता तवास्तु
विद्याधरीनृत्यकलासुखाय ।।१७।।

देवि भक्तिरसभावितवृत्ते
प्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते।
तत्र लौल्यमपि सत्फलमेकं
जन्मकोटिभिरपीह न लभ्यम् ।।१८।।

एतैः षोडशभिः श्लोकैरुपचारोपकल्पितैः ।
यः परां देवतां स्तौति स तेषां फलमाप्नुयात् ।।१९।।

इति श्रीदुर्गामानस-पूजा सम्पूर्णा ।।

वंशी मृदङ्ग पयोज भेरी, नाद मृदु गुञ्जित हुए।
उस स्वर्ग आँगन में, विविध-विध स्वर तरंगायित हुए।।
जो नृत्य-कौशल कर रही, प्रस्तुत वहाँ विद्याधरी।
वह आपकी सुख-शान्ति का, वर्द्धन करे, माँ सुन्दरी।।१७।।

यदि पद्यमय इस स्तोत्र में, हो भक्ति रस किञ्चित कहीं।
हे देवि ! उससे ही, मुदित-मन होइए, करुणामयी!!
तव भक्ति हित मन हो विकल, बस जीव का शुभफल यही।
जो जन्म-जन्मों तव कृपा के बिन, सुलभ होता नहीं।।१८।।

करता स्तवन जो इन पदों से, भगवती का सर्वदा।
इस कल्पना-उपचार का, पाता समर्पण-फल सदा।।१९।।

इस प्रकार श्री दुर्गामानस-पूजा का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।।

अथ दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला

दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गापद्विनिवारिणी।
दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी।।

दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा।
दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोकदवानला।।

दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी।
दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता।।

दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी।
दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी।।

दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी।
दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी।।
दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी।

नामावलिमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः।।
पठेत् सर्वभयान्मुक्तो भविष्यति न संशयः।।

इति श्रीदुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला
सम्पूर्णा।।

श्री दुर्गा बत्तीस नाम माला

दुर्गा सुदुर्गम-आश्रिता दुर्गमापद्विनिवारिणी।
दुर्गमनिहन्त्री दुर्गमाङ्गी दुर्गमायुध-धारिणी।।

दुर्गार्तिशमनी दुर्गसाधिनि दुर्गमोहा दुर्गमा।
दुर्गमालोका दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गमतमा।।

दुर्गतोद्धारिणि दुर्गछेदिनि देवि दुर्गमपथ-प्रदा।
दुर्गम-सुविद्या दुर्गहा दुर्गम्य दुर्गमज्ञानदा।।

विज्ञान-दुर्गम-संस्थाना ध्यान-दुर्गम-रूपिणी।
दनु-दुर्गलोकदवानला कुल-दुर्गमार्थ स्वरूपिणी।।

दुर्गात्मरूपा दुर्गभीमा दुर्ग-दनु-सँहारिणी।
दुर्गमपगा दुर्गमहननि दुर्गेशि दुर्गविदारिणी।।

एहि नाम मम बत्तीस जो, श्रद्धा सहित पाठन करे।
होगा सकल भयमुक्त जन, मन में न कुछ संशय धरे।।

इस प्रकार श्रीदुर्गा बत्तीस नाम माला का
पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।

अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्॥१॥

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥२॥

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥३॥

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥४॥

परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्॥५॥

देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र

जानूँ न माँ! मैं मन्त्र विधि, नहिं तन्त्र का कुछ ज्ञान ।
आह्वान से अनभिज्ञ हूँ, अवगत न मुझको ध्यान है।।
जानूँ न तेरी स्तुति-कथा, मुद्रा न विकल विलाप को।
बस अनुसरण तव जानता, हरता सकल सन्ताप जो।।१।।

नहिं अर्चना-विधि ज्ञात, माँ! है संग अर्थ-अभाव भी।
विधिवत न पूजा कर सकूँ, आलस्य भरा स्वभाव भी।।
करना क्षमा, माँ! चरण-सेवा में कमी यदि हो कहीं।
होंगे कुपुत्र अनेक जग में, पर कुमाता है नहीं।।२।।

हैं पुत्र वसुधा पर बहुत-से, सरल शान्त स्वभाव के।
मुझसा चपल बालक तुम्हारा, है कहीं विरला, शिवे।।
त्यागा मुझे तुमने, उचित व्यवहार, माता! है नहीं।
होंगे कुपुत्र अनेक जग में, पर कुमाता है नहीं।।३।।

पद-भक्ति में तव, हे जगन्माँ! कुछ न की मैंनें कमी।
अति दीन हूँ, धन भी समर्पित कर सका अतिशय नहीं।।
फिर भी तुम्हारे, मुझ अधम पर, स्नेह का कारण यही।
होंगे कुपुत्र अनेक जग में, पर कुमाता है नहीं।।४।।

मैं विविध सेवा-रत रहा, सुर-साधना में अतिघना।
अब वय पचासी हो गयी, होती न पूजा-अर्चना।।
यों आस सुर-गण से न कुछ, यदि तव कृपा नहिं पाउँगा।
गण-ईश माँ! अवलम्ब बिन, किस की शरण में जाउँगा।।५।।

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः ।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ।।६।।

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ।।७।।

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः ।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ।।८।।

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः ।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ।।९।।

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ।।१०।।

तव, माँ अपर्णे! मन्त्र-अक्षर, एक भी जो कहुँ सुने।
नर दीन धनपति शठ अभय, चाण्डाल मृदु वक्ता बने।।
यदि एक अक्षर श्रवण से, जन प्राप्त फल ऐसा करे।
विधिवत जपे जो जाप, उसका सुफल वर्णन से परे।।६।।

जो हैं दिगम्बर, हे भवानी! चिता-भस्मी तन मले।
शिर जटा, विष आहार, वासुकि-सर्प है जिनके गले।।
कापाल पशुपति भूतपति जो, एक ही जगदीश हैं।
तव पाणि-ग्रहण-प्रभाव से, जग के कहाते ईश हैं।।७।।

चन्द्राननी माँ! मुक्ति की, मुझ को नहीं मन-कामना।
ऐश्वर्य सुख विज्ञान की, जग में न किञ्चित चाहना।।
करता रहूँ मैं जन्म-भर, इतनी सुनो मम याचना।
शिव-शिव भवानि मृडाणि, औ रुद्राणि की जप-साधना।।८।।

श्यामा! न अर्चन कर सका, तव विविध-विधि उपचार से।
क्या क्या न किये अधर्म नित, कर्कश-गिरा-उच्चार से।।
फिर भी सहज रखती, दया मुझ दीन पर करुणामयी।
मुझसा न कहीं कपूत जग, नहिं तुम समान दयामयी।।९।।

मैं आज संकट से घिरा, माँ! स्मरण करता हूँ तुझे।
माहेश्वरी! पहले न तेरी याद आती थी मुझे।।
इस बात को जानो न मेरी मूढता, दुर्गति-हरे।
तृष्णा क्षुधा से त्रस्त बालक, याद माँ को ही करे।।१०।।

जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि।
अपराधपरम्परापरं न हि माता समुपेक्षते सुतम्॥ ११॥

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु॥१२॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

जगदम्बिके! मुझ पर कृपा तव, बात अचरज की नहीं।
दोषी निरा हो पुत्र, माँ करती न अन-देखा कहीं॥ ११॥

मुझसा न कोई पातकी, तुम-सम नहीं पातक-हरी।
यह जानि जो समुचित लगे, वैसा करो शिव-सुन्दरी॥ १२॥

इस प्रकार श्री शंकराचार्य विरचित देवी के अपराधक्षमापन स्तोत्र
का पद्यानुवाद सम्पूर्ण हुआ।

सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम्।
येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेत्॥ १॥

न कवचं नार्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम्।
न सूक्तं नापि ध्यानं च न न्यासो न च वार्चनम्॥ २॥

कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत्।
अति गुह्यतरं देवि देवानामपि दुर्लभम्॥ ३॥

गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति।
मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम्।
पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम्॥ ४॥

अथ मन्त्रः

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥ ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः
ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल
ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा

॥ इति मन्त्रः॥

नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि।
नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषार्दिनि॥ १॥

नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि॥ २॥

जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे।
ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका॥ ३॥

क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तु ते।
चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी॥४॥

विच्चे चाभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणि॥५॥

धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नी वां वीं वूं वागधीश्वरी।
क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि शां शीं शूं मे शुभं कुरु॥६॥

हुं हुं हुंकाररूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनी।
भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे भवान्यै ते नमो नमः॥७॥

अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं
धिजाग्रं धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा॥
पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा॥८॥

सां सीं सूं सप्तशती देव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे॥
इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्तिहेतवे।
अभक्ते नैव दातव्यं गोपितं रक्ष पार्वति॥
यस्तु कुञ्जिकया देवि हीनां सप्तशतीं पठेत्।
न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा॥

इति श्रीरुद्रयामले गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे
कुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥
॥ ॐ तत्सत्॥

ललितासहस्रनामावली

ॐ श्रीमात्रे नमः ।
ॐ श्रीमहाराज्ञ्यै नमः ।
ॐ श्रीमत्सिंहासनेश्वर्यै नमः ।
ॐ चिदग्निकुण्डसम्भूतायै नमः ।
ॐ देवकार्यसमुद्यतायै नमः ।
ॐ उद्यद्भानुसहस्राभायै नमः ।
ॐ चतुर्बाहुसमन्वितायै नमः ।
ॐ रागस्वरूपपाशाढ्यायै नमः ।
ॐ क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वलायै नमः ।
ॐ मनोरूपेक्षुकोदण्डायै नमः ।। १० ।।
ॐ पञ्चतन्मात्रसायकायै नमः ।
ॐ निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्माण्डमण्डलायै नमः ।
ॐ चम्पकाशोकपुन्नागसौगन्धिकलसत्कचायै नमः ।
ॐ कुरुविन्दमणिश्रेणीकनत्कोटीरमण्डितायै नमः ।
ॐ अष्टमीचन्द्रविभ्राजदलिकस्थलशोभितायै नमः ।
ॐ मुखचन्द्रकलङ्काभमृगनाभिविशेषकायै नमः ।
ॐ वदनस्मरमाङ्गल्यगृहतोरणचिल्लिकायै नमः ।
ॐ वक्त्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचनायै नमः ।
ॐ नवचम्पकपुष्पाभनासादण्डविराजितायै नमः ।
ॐ ताराकान्तितिरस्कारिनासाभरणभासुरायै नमः ।। २० ।।
ॐ कदम्बमञ्जरीक्लृप्तकर्णपूरमनोहरायै नमः ।
ॐ ताटङ्कयुगलीभूततपनोडुपमण्डलायै नमः ।

ॐ पद्मरागशिलादर्शपरिभाविकपोलभुवे नमः ।
ॐ नवविद्रुमबिम्बश्रीन्यक्कारिदशनच्छदायै नमः ।
ॐ शुद्धविद्याङ्कुराकारद्विजपङ्क्तिद्वयोज्ज्वलायै नमः ।
ॐ कर्पूरवीटिकामोदसमाकर्षिद्दिगन्तरायै नमः ।
ॐ निजसंल्लापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छप्यै नमः ।
ॐ मन्दस्मितप्रभापूरमज्जत्कामेशमानसायै नमः ।
ॐ अनाकलितसादृश्यचिबुकश्रीविराजितायै नमः ।
ॐ कामेशबद्धमाङ्गल्यसूत्रशोभितकन्धरायै नमः ।। ३० ।।
ॐ कनकाङ्गदकेयूरकमनीयभुजान्वितायै नमः ।
ॐ रत्नग्रैवेयचिन्ताकलोलमुक्ताफलान्वितायै नमः ।
ॐ कामेश्वरप्रेमरत्नमणिप्रतिपणस्तन्यै नमः ।
ॐ नाभ्यालवालरोमालिलताफलकुचद्वय्यै नमः ।
ॐ लक्ष्यरोमलताधारतासमुन्नेयमध्यमायै नमः ।
ॐ स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रयायै नमः ।
ॐ अरुणारुणकौसुम्भवस्त्रभास्वत्कटीतट्यै नमः ।
ॐ रत्नकिङ्किणिकारम्यरशनादामभूषितायै नमः ।
ॐ कामेशज्ञातसौभाग्यमार्दवोरुद्वयान्वितायै नमः ।
ॐ माणिक्यमुकुटाकारजानुद्वयविराजितायै नमः ।। ४० ।।
ॐ इन्द्रगोपपरिक्षिप्तस्मरतूणाभजङ्घिकायै नमः ।
ॐ गूढगुल्फायै नमः ।
ॐ कूर्मपृष्ठजयिष्णुप्रपदान्वितायै नमः ।
ॐ नखदीधितिसञ्छन्ननमज्जनतमोगुणायै नमः ।
ॐ पदद्वयप्रभाजालपराकृतसरोरुहायै नमः ।
ॐ सिञ्जानमणिमञ्जीरमण्डितश्रीपदाम्बुजायै नमः ।
ॐ मरालीमन्दगमनायै नमः ।

ॐ महालावण्यशेवधये नमः ।
ॐ सर्वारुणायै नमः ।
ॐ अनवद्याङ्ग्यै नमः ॥५०॥
ॐ सर्वाभरणभूषितायै नमः ।
ॐ शिवकामेश्वराङ्कस्थायै नमः ।
ॐ शिवायै नमः ।
ॐ स्वाधीनवल्लभायै नमः ।
ॐ सुमेरुशृङ्गमध्यस्थायै नमः ।
ॐ श्रीमन्नगरनायिकायै नमः ।
ॐ चिन्तामणिगृहान्तःस्थायै नमः ।
ॐ पञ्चब्रह्मासनस्थितायै नमः ।
ॐ महापद्माटवीसंस्थायै नमः ।
ॐ कदम्बवनवासिन्यै नमः ॥ ६० ॥
ॐ सुधासागरमध्यस्थायै नमः ।
ॐ कामाक्ष्यै नमः ।
ॐ कामदायिन्यै नमः ।
ॐ देवर्षिगणसङ्घातस्तूयमानात्मवैभवायै नमः ।
ॐ भण्डासुरवधोद्युक्तशक्तिसेनासमन्वितायै नमः ।
ॐ सम्पत्करीसमारूढसिन्धुरव्रजसेवितायै नमः ।
ॐ अश्वारूढाधिष्ठिताश्वकोटिकोटिभिरावृतायै नमः ।
ॐ चक्रराजरथारूढसर्वायुधपरिष्कृतायै नमः ।
ॐ गेयचक्ररथारूढमन्त्रिणीपरिसेवितायै नमः ।
ॐ किरिचक्ररथारूढदण्डनाथपुरस्कृतायै नमः ॥७०॥
ॐ ज्वालामालिनिकाक्षिप्तवह्निप्राकारमध्यगायै नमः ।
ॐ भण्डसैन्यवधोद्युक्तशक्तिविक्रमहर्षितायै नमः ।

ॐ नित्यापराक्रमाटोपनिरीक्षणसमुत्सुकायै नमः ।
ॐ भण्डपुत्रवधोद्युक्तबालाविक्रमनन्दितायै नमः ।
ॐ मन्त्रिण्यम्बाविरचितविषङ्गवधतोषितायै नमः ।
ॐ विशुक्रप्राणहरणवाराहीवीर्यनन्दितायै नमः ।
ॐ कामेश्वरमुखालोककल्पितश्रीगणेश्वरायै नमः ।
ॐ महागणेशनिर्भिन्नविघ्नयन्त्रप्रहर्षितायै नमः ।
ॐ भण्डासुरेन्द्रनिर्मुक्तशस्त्रप्रत्यस्त्रवर्षिण्यै नमः ।
ॐ कराङ्गुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृत्यै नमः ॥ ८० ॥
ॐ महापाशुपतास्त्राग्निनिर्दग्धासुरसैनिकायै नमः ।
ॐ कामेश्वरास्त्रनिर्दग्धसभण्डासुरशून्यकायै नमः ।
ॐ ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रादिदेवसंस्तुतवैभवायै नमः ।
ॐ हरनेत्राग्निसन्दग्धकामसञ्जीवनौषध्यै नमः ।
ॐ श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजायै नमः ।
ॐ कण्ठाधःकटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिण्यै नमः ।
ॐ मूलमन्त्रात्मिकायै नमः ।
ॐ मूलकूटत्रयकलेवरायै नमः ।
ॐ कुलामृतैकरसिकायै नमः ॥ ९० ॥
ॐ कुलसङ्केतपालिन्यै नमः ।
ॐ कुलाङ्गनायै नमः ।
ॐ कुलान्तःस्थायै नमः ।
ॐ कौलिन्यै नमः ।
ॐ कुलयोगिन्यै नमः ।
ॐ अकुलायै नमः ।
ॐ समयान्तस्थायै नमः ।

ॐ समयाचारतत्परायै नमः ।
ॐ मूलाधारैकनिलयायै नमः ।
ॐ ब्रह्मग्रन्थिविभेदिन्यै नमः ।।१००।।
ॐ मणिपूरान्तरुदितायै नमः ।
ॐ विष्णुग्रन्थिविभेदिन्यै नमः ।
ॐ आज्ञाचक्रान्तरालस्थायै नमः ।
ॐ रुद्रग्रन्थिविभेदिन्यै नमः ।
ॐ सहस्राराम्बुजारूढायै नमः ।
ॐ सुधासाराभिवर्षिण्यै नमः ।
ॐ तडिल्लतासमरुच्यै नमः ।
ॐ षट्चक्रोपरिसंस्थितायै नमः ।
ॐ महाशक्त्यै नमः ।
ॐ कुण्डलिन्यै नमः ।।११०।।
ॐ बिसतन्तुतनीयस्यै नमः ।
ॐ भवान्यै नमः ।
ॐ भावनागम्यायै नमः ।
ॐ भवारण्यकुठारिकायै नमः ।
ॐ भद्रप्रियायै नमः ।
ॐ भद्रमूर्त्यै नमः ।
ॐ भक्तसौभाग्यदायिन्यै नमः ।
ॐ भक्तिप्रियायै नमः ।
ॐ भक्तिगम्यायै नमः ।
ॐ भक्तिवश्यायै नमः ।।१२०।।
ॐ भयापहायै नमः ।
ॐ शाम्भव्यै नमः ।

ॐ शारदाराध्यायै नमः ।
ॐ शर्वाण्यै नमः ।
ॐ शर्मदायिन्यै नमः ।
ॐ शाङ्कर्यै नमः ।
ॐ श्रीकर्यै नमः ।
ॐ साध्व्यै नमः ।
ॐ शरच्चन्द्रनिभाननायै नमः ।
ॐ शातोदर्यै नमः ।।१३०।।
ॐ शान्तिमत्यै नमः ।
ॐ निराधारायै नमः ।
ॐ निरञ्जनायै नमः ।
ॐ निर्लेपायै नमः ।
ॐ निर्मलायै नमः ।
ॐ नित्यायै नमः ।
ॐ निराकारायै नमः ।
ॐ निराकुलायै नमः ।
ॐ निर्गुणायै नमः ।
ॐ निष्कलायै नमः ।।१४०।।
ॐ शान्तायै नमः ।
ॐ निष्कामायै नमः ।
ॐ निरुपप्लवायै नमः ।
ॐ नित्यमुक्तायै नमः ।
ॐ निर्विकारायै नमः ।
ॐ निष्प्रपञ्चायै नमः ।
ॐ निराश्रयायै नमः ।

ॐ नित्यशुद्धायै नमः।
ॐ नित्यबुद्धायै नमः।
ॐ निरवद्यायै नमः ॥१५०॥
ॐ निरन्तरायै नमः।
ॐ निष्कारणायै नमः।
ॐ निष्कलङ्कायै नमः।
ॐ निरुपाधये नमः।
ॐ निरीश्वरायै नमः।
ॐ नीरागायै नमः।
ॐ रागमथन्यै नमः।
ॐ निर्मदायै नमः।
ॐ मदनाशिन्यै नमः।
ॐ निश्चिन्तायै नमः ॥१६०॥
ॐ निरहङ्कारायै नमः।
ॐ निर्मोहायै नमः।
ॐ मोहनाशिन्यै नमः।
ॐ निर्ममायै नमः।
ॐ ममताहन्त्र्यै नमः।
ॐ निष्पापायै नमः।
ॐ पापनाशिन्यै नमः।
ॐ निष्क्रोधायै नमः।
ॐ क्रोधशमन्यै नमः।
ॐ निर्लोभायै नमः ॥१७०॥
ॐ लोभनाशिन्यै नमः।
ॐ निःसंशयायै नमः।

ॐ संशयघ्न्यै नमः ।
ॐ निर्भवायै नमः ।
ॐ भवनाशिन्यै नमः ।
ॐ निर्विकल्पायै नमः ।
ॐ निराबाधायै नमः ।
ॐ निर्भेदायै नमः ।
ॐ भेदनाशिन्यै नमः ।
ॐ निर्नाशायै नमः ॥१८०॥
ॐ मृत्युमथन्यै नमः ।
ॐ निष्क्रियायै नमः ।
ॐ निष्परिग्रहायै नमः ।
ॐ निस्तुलायै नमः ।
ॐ नीलचिकुरायै नमः ।
ॐ निरपायायै नमः ।
ॐ निरत्ययायै नमः ।
ॐ दुर्लभायै नमः ।
ॐ दुर्गमायै नमः ।
ॐ दुर्गायै नमः ॥१९०॥
ॐ दुःखहन्त्र्यै नमः ।
ॐ सुखप्रदायै नमः ।
ॐ दुष्टदूरायै नमः ।
ॐ दुराचारशमन्यै नमः ।
ॐ दोषवर्जितायै नमः ।
ॐ सर्वज्ञायै नमः ।
ॐ सान्द्रकरुणायै नमः ।

ॐ समानाधिकवर्जितायै नमः ।
ॐ सर्वशक्तिमय्यै नमः ।
ॐ सर्वमङ्गलायै नमः ।।२००।।
ॐ सद्गतिप्रदायै नमः ।
ॐ सर्वेश्वर्यै नमः ।
ॐ सर्वमय्यै नमः ।
ॐ सर्वमन्त्रस्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ सर्वयन्त्रात्मिकायै नमः ।
ॐ सर्वतन्त्ररूपायै नमः ।
ॐ मनोन्मन्यै नमः ।
ॐ माहेश्वर्यै नमः ।
ॐ महादेव्यै नमः ।
ॐ महालक्ष्म्यै नमः ।।२१०।।
ॐ मृडप्रियायै नमः ।
ॐ महारूपायै नमः ।
ॐ महापूज्यायै नमः ।
ॐ महापातकनाशिन्यै नमः ।
ॐ महामायायै नमः ।
ॐ महासत्त्वायै नमः ।
ॐ महाशक्त्यै नमः ।
ॐ महारत्यै नमः ।
ॐ महाभोगायै नमः ।
ॐ महैश्वर्यायै नमः ।।२२०।।
ॐ महावीर्यायै नमः ।
ॐ महाबलायै नमः ।

ॐ महाबुद्ध्यै नमः ।
ॐ महासिद्ध्यै नमः ।
ॐ महायोगेश्वरेश्वर्यै नमः ।
ॐ महातन्त्रायै नमः ।
ॐ महामन्त्रायै नमः ।
ॐ महायन्त्रायै नमः ।
ॐ महासनायै नमः ।
ॐ महायागक्रमाराध्यायै नमः ॥२३०॥
ॐ महाभैरवपूजितायै नमः ।
ॐ महेश्वरमहाकल्पमहाताण्डवसाक्षिण्यै नमः ।
ॐ महाकामेशमहिष्यै नमः ।
ॐ महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।
ॐ चतुःषष्ट्युपचाराढ्यायै नमः ।
ॐ चतुःषष्टिकलामय्यै नमः ।
ॐ महाचतुःषष्टिकोटियोगिनीगणसेवितायै नमः ।
ॐ मनुविद्यायै नमः ।
ॐ चन्द्रविद्यायै नमः ।
ॐ चन्द्रमण्डलमध्यगायै नमः ॥२४०॥
ॐ चारुरूपायै नमः ।
ॐ चारुहासायै नमः ।
ॐ चारुचन्द्रकलाधरायै नमः ।
ॐ चराचरजगन्नाथायै नमः ।
ॐ चक्रराजनिकेतनायै नमः ।
ॐ पार्वत्यै नमः ।
ॐ पद्मनयनायै नमः ।

ॐ पद्मरागसमप्रभायै नमः ।
ॐ पञ्चप्रेतासनासीनायै नमः ।
ॐ पञ्चब्रह्मस्वरूपिण्यै नमः ।। २५०।।
ॐ चिन्मय्यै नमः ।
ॐ परमानन्दायै नमः ।
ॐ विज्ञानघनरूपिण्यै नमः ।
ॐ ध्यानध्यातृध्येयरूपायै नमः ।
ॐ धर्माधर्मविवर्जितायै नमः ।
ॐ विश्वरूपायै नमः ।
ॐ जागरिण्यै नमः ।
ॐ स्वपन्त्यै नमः ।
ॐ तैजसात्मिकायै नमः ।
ॐ सुप्तायै नमः ।। २६० ।।
ॐ प्राज्ञात्मिकायै नमः ।
ॐ तुर्यायै नमः ।
ॐ सर्वावस्थाविवर्जितायै नमः ।
ॐ सृष्टिकर्त्र्यै नमः ।
ॐ ब्रह्मरूपायै नमः ।
ॐ गोप्त्र्यै नमः ।
ॐ गोविन्दरूपिण्यै नमः ।
ॐ संहारिण्यै नमः ।
ॐ रुद्ररूपायै नमः ।
ॐ तिरोधानकर्त्र्यै नमः ।। २७० ।।
ॐ ईश्वर्यै नमः ।
ॐ सदाशिवायै नमः ।

ॐ अनुग्रहदायै नमः ।
ॐ पञ्चकृत्यपरायणायै नमः ।
ॐ भानुमण्डलमध्यस्थायै नमः ।
ॐ भैरव्यै नमः ।
ॐ भगमालिन्यै नमः ।
ॐ पद्मासनायै नमः ।
ॐ भगवत्यै नमः ।
ॐ पद्मनाभसहोदर्यै नमः ।। २८० ।।
ॐ उन्मेषनिमिषोत्पन्नविपन्नभुवनावल्यै नमः ।
ॐ सहस्रशीर्षवदनायै नमः ।
ॐ सहस्राक्ष्यै नमः ।
ॐ सहस्रपादे नमः ।
ॐ आब्रह्मकीटजनन्यै नमः ।
ॐ वर्णाश्रमविधायिन्यै नमः ।
ॐ निजाज्ञारूपनिगमायै नमः ।
ॐ पुण्यापुण्यफलप्रदायै नमः ।
ॐ श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृतपादाब्जधूलिकायै नमः ।
ॐ सकलागमसन्दोहशुक्तिसम्पुटमौक्तिकायै नमः ।। २९० ।।
ॐ पुरुषार्थप्रदायै नमः ।
ॐ पूर्णायै नमः ।
ॐ भोगिन्यै नमः ।
ॐ भुवनेश्वर्यै नमः ।
ॐ अम्बिकायै नमः ।
ॐ अनादिनिधनायै नमः ।
ॐ हरिब्रह्मेन्द्रसेवितायै नमः ।

ॐ नारायण्यै नमः ।
ॐ नादरूपायै नमः ।
ॐ नामरूपविवर्जितायै नमः ।।३००।।
ॐ ह्रींकार्यै नमः ।
ॐ ह्रीमत्यै नमः ।
ॐ हृद्यायै नमः ।
ॐ हेयोपादेयवर्जितायै नमः ।
ॐ राजराजार्चितायै नमः ।
ॐ राज्ञ्यै नमः ।
ॐ रम्यायै नमः ।
ॐ राजीवलोचनायै नमः ।
ॐ रञ्जन्यै नमः ।
ॐ रमण्यै नमः ।।३१०।।
ॐ रस्यायै नमः ।
ॐ रणत्किङ्किणिमेखलायै नमः ।
ॐ रमायै नमः ।
ॐ राकेन्दुवदनायै नमः ।
ॐ रतिरूपायै नमः ।
ॐ रतिप्रियायै नमः ।
ॐ रक्षाकर्यै नमः ।
ॐ राक्षसघ्न्यै नमः ।
ॐ रामायै नमः ।
ॐ रमणलम्पटायै नमः ।।३२०।।
ॐ काम्यायै नमः ।
ॐ कामकलारूपायै नमः ।

ॐ कदम्बकुसुमप्रियायै नमः ।
ॐ कल्याण्यै नमः ।
ॐ जगतीकन्दायै नमः ।
ॐ करुणारससागरायै नमः ।
ॐ कलावत्यै नमः ।
ॐ कलालापायै नमः ।
ॐ कान्तायै नमः ।
ॐ कादम्बरीप्रियायै नमः ।।३३०।।
ॐ वरदायै नमः ।
ॐ वामनयनायै नमः ।
ॐ वारुणीमदविह्वलायै नमः ।
ॐ विश्वाधिकायै नमः ।
ॐ वेदवेद्यायै नमः ।
ॐ विन्ध्याचलनिवासिन्यै नमः ।
ॐ विधात्र्यै नमः ।
ॐ वेदजनन्यै नमः ।
ॐ विष्णुमायायै नमः ।
ॐ विलासिन्यै नमः ।।३४०।।
ॐ क्षेत्रस्वरूपायै नमः ।
ॐ क्षेत्रेश्यै नमः ।
ॐ क्षेत्रक्षेत्रज्ञपालिन्यै नमः ।
ॐ क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तायै नमः ।
ॐ क्षेत्रपालसमर्चितायै नमः ।
ॐ विजयायै नमः ।
ॐ विमलायै नमः ।

ॐ वन्द्यायै नमः ।
ॐ वन्दारुजनवत्सलायै नमः ।
ॐ वाग्वादिन्यै नमः ।।३५०।।
ॐ वामकेश्यै नमः ।
ॐ वह्निमण्डलवासिन्यै नमः ।
ॐ भक्तिमत्कल्पलतिकायै नमः ।
ॐ पशुपाशविमोचिन्यै नमः ।
ॐ संहृताशेषपाषण्डायै नमः ।
ॐ सदाचारप्रवर्तिकायै नमः ।
ॐ तापत्रयाग्निसन्तप्तसमाह्लादनचन्द्रिकायै नमः ।
ॐ तरुण्यै नमः ।
ॐ तापसाराध्यायै नमः ।
ॐ तनुमध्यायै नमः ।।३६०।।
ॐ तमोपहायै नमः ।
ॐ चित्यै नमः ।
ॐ तत्पदलक्ष्यार्थायै नमः ।
ॐ चिदेकरसरूपिण्यै नमः ।
ॐ स्वात्मानन्दलवीभूतब्रह्माद्यानन्दसन्तत्यै नमः ।
ॐ परायै नमः ।
ॐ प्रत्यक्चितीरूपायै नमः ।
ॐ पश्यन्त्यै नमः ।
ॐ परदेवतायै नमः ।
ॐ मध्यमायै नमः ।।३७०।।
ॐ वैखरीरूपायै नमः ।
ॐ भक्तमानसहंसिकायै नमः ।
ॐ कामेश्वरप्राणनाड्यै नमः ।

ॐ कृतज्ञायै नमः ।
ॐ कामपूजितायै नमः ।
ॐ शृङ्गाररससम्पूर्णायै नमः ।
ॐ जयायै नमः ।
ॐ जालन्धरस्थितायै नमः ।
ॐ ओड्याणपीठनिलयायै नमः ।
ॐ बिन्दुमण्डलवासिन्यै नमः ।।३८०।।
ॐ रहोयागक्रमाराध्यायै नमः ।
ॐ रहस्तर्पणतर्पितायै नमः ।
ॐ सद्यःप्रसादिन्यै नमः ।
ॐ विश्वसाक्षिण्यै नमः ।
ॐ साक्षिवर्जितायै नमः ।
ॐ षडङ्गदेवतायुक्तायै नमः ।
ॐ षाड्गुण्यपरिपूरितायै नमः ।
ॐ नित्यक्लिन्नायै नमः ।
ॐ निरुपमायै नमः ।
ॐ निर्वाणसुखदायिन्यै नमः ।।३९०।।
ॐ नित्याषोडशिकारूपायै नमः ।
ॐ श्रीकण्ठार्द्धशरीरिण्यै नमः ।
ॐ प्रभावत्यै नमः ।
ॐ प्रभारूपायै नमः ।
ॐ प्रसिद्धायै नमः ।
ॐ परमेश्वर्यै नमः ।
ॐ मूलप्रकृत्यै नमः ।
ॐ अव्यक्तायै नमः ।
ॐ व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिण्यै नमः ।

ॐ व्यापिन्यै नमः ।।४००।।
ॐ विविधाकारायै नमः ।
ॐ विद्याविद्यास्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ महाकामेशनयनकुमुदाह्लादकौमुद्यै नमः ।
ॐ भक्तहार्दतमोभेदभानुमद्भानुसन्तत्यै नमः ।
ॐ शिवदूत्यै नमः ।
ॐ शिवाराध्यायै नमः ।
ॐ शिवमूर्त्यै नमः ।
ॐ शिवङ्कर्यै नमः ।
ॐ शिवप्रियायै नमः ।
ॐ शिवपरायै नमः ।।४१०।।
ॐ शिष्टेष्टायै नमः ।
ॐ शिष्टपूजितायै नमः ।
ॐ अप्रमेयायै नमः ।
ॐ स्वप्रकाशायै नमः ।
ॐ मनोवाचामगोचरायै नमः ।
ॐ चिच्छक्त्यै नमः ।
ॐ चेतनारूपायै नमः ।
ॐ जडशक्त्यै नमः ।
ॐ जडात्मिकायै नमः ।
ॐ गायत्र्यै नमः ।।४२०।।
ॐ व्याहृत्यै नमः ।
ॐ सन्ध्यायै नमः ।
ॐ द्विजबृन्दनिषेवितायै नमः ।
ॐ तत्त्वासनायै नमः ।
ॐ तत्त्वमय्यै नमः ।

ॐ पञ्चकोशान्तरस्थितायै नमः ।
ॐ निःसीममहिम्ने नमः ।
ॐ नित्ययौवनायै नमः ।
ॐ मदशालिन्यै नमः ।
ॐ मदघूर्णितरक्ताक्ष्यै नमः ।।४३०।।
ॐ मदपाटलगण्डभुवे नमः ।
ॐ चन्दनद्रवदिग्धाङ्ग्यै नमः ।
ॐ चाम्पेयकुसुमप्रियायै नमः ।
ॐ कुशलायै नमः ।
ॐ कोमलाकारायै नमः ।
ॐ कुरुकुल्लायै नमः ।
ॐ कुलेश्वर्यै नमः ।
ॐ कुलकुण्डालयायै नमः ।
ॐ कौलमार्गतत्परसेवितायै नमः ।
ॐ कुमारगणनाथाम्बायै नमः ।।४४०।।
ॐ तुष्ट्यै नमः ।
ॐ पुष्ट्यै नमः ।
ॐ मत्यै नमः ।
ॐ धृत्यै नमः ।
ॐ शान्त्यै नमः ।
ॐ स्वस्तिमत्यै नमः ।
ॐ कान्त्यै नमः ।
ॐ नन्दिन्यै नमः ।
ॐ विघ्ननाशिन्यै नमः ।
ॐ तेजोवत्यै नमः ।।४५०।।
ॐ त्रिनयनायै नमः ।

ॐ लोलाक्ष्यै नमः ।
ॐ कामरूपिण्यै नमः ।
ॐ मालिन्यै नमः ।
ॐ हंसिन्यै नमः ।
ॐ मात्रे नमः ।
ॐ मलयाचलवासिन्यै नमः ।
ॐ सुमुख्यै नमः ।
ॐ नलिन्यै नमः ।
ॐ सुभ्रुवे नमः ॥४६०॥
ॐ शोभनायै नमः ।
ॐ सुरनायिकायै नमः ।
ॐ कालकण्ठ्यै नमः ।
ॐ कान्तिमत्यै नमः ।
ॐ क्षोभिण्यै नमः ।
ॐ सूक्ष्मरूपिण्यै नमः ।
ॐ वज्रेश्वर्यै नमः ।
ॐ वामदेव्यै नमः ।
ॐ वयोऽवस्थाविवर्जितायै नमः ।
ॐ सिद्धेश्वर्यै नमः ॥४७०॥
ॐ सिद्धविद्यायै नमः ।
ॐ सिद्धमात्रे नमः ।
ॐ यशस्विन्यै नमः ।
ॐ विशुद्धिचक्रनिलयायै नमः ।
ॐ आरक्तवर्णायै नमः ।
ॐ त्रिलोचनायै नमः ।
ॐ खट्वाङ्गादिप्रहरणायै नमः ।

ॐ वदनैकसमन्वितायै नमः ।
ॐ पायसान्नप्रियायै नमः ।
ॐ त्वक्स्थायै नमः ॥४८०॥
ॐ पशुलोकभयङ्कर्यै नमः ।
ॐ अमृतादिमहाशक्तिसंवृतायै नमः ।
ॐ डाकिनीश्वर्यै नमः ।
ॐ अनाहताब्जनिलयायै नमः ।
ॐ श्यामाभायै नमः ।
ॐ वदनद्वयायै नमः ।
ॐ दंष्ट्रोज्ज्वलायै नमः ।
ॐ अक्षमालादिधरायै नमः ।
ॐ रुधिरसंस्थितायै नमः ।
ॐ कालरात्र्यादिशक्त्यौघवृतायै नमः ॥४९०॥
ॐ स्निग्धौदनप्रियायै नमः ।
ॐ महावीरेन्द्रवरदायै नमः ।
ॐ राकिण्यम्बास्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ मणिपूराब्जनिलयायै नमः ।
ॐ वदनत्रयसंयुतायै नमः ।
ॐ वज्रादिकायुधोपेतायै नमः ।
ॐ डामर्यादिभिरावृतायै नमः ।
ॐ रक्तवर्णायै नमः ।
ॐ मांसनिष्ठायै नमः ।
ॐ गुडान्नप्रीतमानसायै नमः ॥५००॥
ॐ समस्तभक्तसुखदायै नमः ।
ॐ लाकिन्यम्बास्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ स्वाधिष्ठानाम्बुजगतायै नमः ।

ॐ चतुर्वक्त्रमनोहरायै नमः ।
ॐ शूलाद्यायुधसम्पन्नायै नमः ।
ॐ पीतवर्णायै नमः ।
ॐ अतिगर्वितायै नमः ।
ॐ मेदोनिष्ठायै नमः ।
ॐ मधुप्रीतायै नमः ।
ॐ बन्धिन्यादिसमन्वितायै नमः ।। ५१० ।।
ॐ दध्यन्नासक्तहृदयायै नमः ।
ॐ काकिनीरूपधारिण्यै नमः ।
ॐ मूलाधाराम्बुजारूढायै नमः ।
ॐ पञ्चवक्त्रायै नमः ।
ॐ अस्थिसंस्थितायै नमः ।
ॐ अङ्कुशादिप्रहरणायै नमः ।
ॐ वरदादिनिषेवितायै नमः ।
ॐ मुद्गौदनासक्तचित्तायै नमः ।
ॐ साकिन्यम्बास्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ आज्ञाचक्राब्जनिलयायै नमः ।। ५२० ।।
ॐ शुक्लवर्णायै नमः ।
ॐ षडाननायै नमः ।
ॐ मज्जासंस्थायै नमः ।
ॐ हंसवत्यै नमः ।
ॐ मुख्यशक्तिसमन्वितायै नमः ।
ॐ हरिद्रान्नैकरसिकायै नमः ।
ॐ हाकिनीरूपधारिण्यै नमः ।
ॐ सहस्रदलपद्मस्थायै नमः ।
ॐ सर्ववर्णोपशोभितायै नमः ।

ॐ सर्वायुधधरायै नमः ॥ ५३० ॥
ॐ शुक्लसंस्थितायै नमः ।
ॐ सर्वतोमुख्यै नमः ।
ॐ सर्वौदनप्रीतचित्तायै नमः ।
ॐ याकिन्यम्बास्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ स्वाहायै नमः ।
ॐ स्वधायै नमः ।
ॐ मत्यै नमः ।
ॐ मेधायै नमः ।
ॐ श्रुत्यै नमः ।
ॐ स्मृत्यै नमः ॥ ५४० ॥
ॐ अनुत्तमायै नमः ।
ॐ पुण्यकीर्त्यै नमः ।
ॐ पुण्यलभ्यायै नमः ।
ॐ पुण्यश्रवणकीर्तनायै नमः ।
ॐ पुलोमजार्चितायै नमः ।
ॐ बन्धमोचन्यै नमः ।
ॐ बर्बरालकायै नमः ।
ॐ विमर्शरूपिण्यै नमः ।
ॐ विद्यायै नमः ।
ॐ वियदादिजगत्प्रसवे नमः ॥ ५५० ॥
ॐ सर्वव्याधिप्रशमन्यै नमः ।
ॐ सर्वमृत्युनिवारिण्यै नमः ।
ॐ अग्रगण्यायै नमः ।
ॐ अचिन्त्यरूपायै नमः ।
ॐ कलिकल्मषनाशिन्यै नमः ।

ॐ कात्यायन्यै नमः ।
ॐ कालहन्त्र्यै नमः ।
ॐ कमलाक्षनिषेवितायै नमः ।
ॐ ताम्बूलपूरितमुख्यै नमः ।
ॐ दाडिमीकुसुमप्रभायै नमः ।। ५६० ।।
ॐ मृगाक्ष्यै नमः ।
ॐ मोहिन्यै नमः ।
ॐ मुख्यायै नमः ।
ॐ मृडान्यै नमः ।
ॐ मित्ररूपिण्यै नमः ।
ॐ नित्यतृप्तायै नमः ।
ॐ भक्तनिधये नमः ।
ॐ नियन्त्र्यै नमः ।
ॐ निखिलेश्वर्यै नमः ।
ॐ मैत्र्यादिवासनालभ्यायै नमः ।। ५७० ।।
ॐ महाप्रलयसाक्षिण्यै नमः ।
ॐ पराशक्त्यै नमः ।
ॐ परानिष्ठायै नमः ।
ॐ प्रज्ञानघनरूपिण्यै नमः ।
ॐ माध्वीपानालसायै नमः ।
ॐ मत्तायै नमः ।
ॐ मातृकावर्णरूपिण्यै नमः ।
ॐ महाकैलासनिलयायै नमः ।
ॐ मृणालमृदुदोर्लतायै नमः ।
ॐ महनीयायै नमः ।। ५८० ।।
ॐ दयामूर्त्यै नमः ।

ॐ महासाम्राज्यशालिन्यै नमः ।
ॐ आत्मविद्यायै नमः ।
ॐ महाविद्यायै नमः ।
ॐ श्रीविद्यायै नमः ।
ॐ कामसेवितायै नमः ।
ॐ श्रीषोडशाक्षरीविद्यायै नमः ।
ॐ त्रिकूटायै नमः ।
ॐ कामकोटिकायै नमः ।
ॐ कटाक्षकिङ्करीभूतकमलाकोटिसेवितायै नमः ।। ५९० ।।
ॐ शिरःस्थितायै नमः ।
ॐ चन्द्रनिभायै नमः ।
ॐ भालस्थायै नमः ।
ॐ इन्द्रधनुःप्रभायै नमः ।
ॐ हृदयस्थायै नमः ।
ॐ रविप्रख्यायै नमः ।
ॐ त्रिकोणान्तरदीपिकायै नमः ।
ॐ दाक्षायण्यै नमः ।
ॐ दैत्यहन्त्र्यै नमः ।
ॐ दक्षयज्ञविनाशिन्यै नमः ।। ६०० ।।
ॐ दरान्दोलितदीर्घाक्ष्यै नमः ।
ॐ दरहासोज्ज्वलन्मुख्यै नमः ।
ॐ गुरुमूर्त्यै नमः ।
ॐ गुणनिधये नमः ।
ॐ गोमात्रे नमः ।
ॐ गुहजन्मभुवे नमः ।
ॐ देवेश्यै नमः ।

ॐ दण्डनीतिस्थायै नमः ।
ॐ दहराकाशरूपिण्यै नमः ।
ॐ प्रतिपन्मुख्यराकान्ततिथिमण्डलपूजितायै नमः ।। ६१० ।।
ॐ कलात्मिकायै नमः ।
ॐ कलानाथायै नमः ।
ॐ काव्यालापविनोदिन्यै नमः ।
ॐ सचामररमावाणीसव्यदक्षिणसेवितायै नमः ।
ॐ आदिशक्त्यै नमः ।
ॐ अमेयायै नमः ।
ॐ आत्मने नमः ।
ॐ परमायै नमः ।
ॐ पावनाकृतयै नमः ।
ॐ अनेककोटिब्रह्माण्डजनन्यै नमः ।। ६२० ।।
ॐ दिव्यविग्रहायै नमः ।
ॐ क्लींकार्यै नमः ।
ॐ केवलायै नमः ।
ॐ गुह्यायै नमः ।
ॐ कैवल्यपददायिन्यै नमः ।
ॐ त्रिपुरायै नमः ।
ॐ त्रिजगद्वन्द्यायै नमः ।
ॐ त्रिमूर्त्यै नमः ।
ॐ त्रिदशेश्वर्यै नमः ।
ॐ त्र्यक्षर्यै नमः ।। ६३० ।।
ॐ दिव्यगन्धाढ्यायै नमः ।
ॐ सिन्दूरतिलकाञ्चितायै नमः ।
ॐ उमायै नमः ।

ॐ शैलेन्द्रतनयायै नमः ।
ॐ गौर्यै नमः ।
ॐ गन्धर्वसेवितायै नमः ।
ॐ विश्वगर्भायै नमः ।
ॐ स्वर्णगर्भायै नमः ।
ॐ अवरदायै नमः ।
ॐ वागधीश्वर्यै नमः ।।६४०।।
ॐ ध्यानगम्यायै नमः ।
ॐ अपरिच्छेद्यायै नमः ।
ॐ ज्ञानदायै नमः ।
ॐ ज्ञानविग्रहायै नमः ।
ॐ सर्ववेदान्तसंवेद्यायै नमः ।
ॐ सत्यानन्दस्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ लोपामुद्रार्चितायै नमः ।
ॐ लीलाक्लृप्तब्रह्माण्डमण्डलायै नमः ।
ॐ अदृश्यायै नमः ।
ॐ दृश्यरहितायै नमः ।।६५०।।
ॐ विज्ञात्र्यै नमः ।
ॐ वेद्यवर्जितायै नमः ।
ॐ योगिन्यै नमः ।
ॐ योगदायै नमः ।
ॐ योग्यायै नमः ।
ॐ योगानन्दायै नमः ।
ॐ युगन्धरायै नमः ।
ॐ इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ सर्वाधारायै नमः ।

ॐ सुप्रतिष्ठायै नमः ।। ६६० ।।
ॐ सदसद्रूपधारिण्यै नमः ।
ॐ अष्टमूर्त्यै नमः ।
ॐ अजाजैत्र्यै नमः ।
ॐ लोकयात्राविधायिन्यै नमः ।
ॐ एकाकिन्यै नमः ।
ॐ भूमरूपायै नमः ।
ॐ निर्द्वैतायै नमः ।
ॐ द्वैतवर्जितायै नमः ।
ॐ अन्नदायै नमः ।
ॐ वसुदायै नमः ।।६७०।।
ॐ वृद्धायै नमः ।
ॐ ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ बृहत्यै नमः ।
ॐ ब्राह्मण्यै नमः ।
ॐ ब्राह्म्यै नमः ।
ॐ ब्रह्मानन्दायै नमः ।
ॐ बलिप्रियायै नमः ।
ॐ भाषारूपायै नमः ।
ॐ बृहत्सेनायै नमः ।
ॐ भावाभावविवर्जितायै नमः ।। ६८० ।।
ॐ सुखाराध्यायै नमः ।
ॐ शुभकर्यै नमः ।
ॐ शोभनायै नमः ।
ॐ सुलभागत्यै नमः ।

ॐ राजराजेश्वर्यै नमः ।
ॐ राज्यदायिन्यै नमः ।
ॐ राज्यवल्लभायै नमः ।
ॐ राजत्कृपायै नमः ।
ॐ राजपीठनिवेशितनिजाश्रितायै नमः ।
ॐ राज्यलक्ष्म्यै नमः ॥ ६९० ॥
ॐ कोशनाथायै नमः ।
ॐ चतुरङ्गबलेश्वर्यै नमः ।
ॐ साम्राज्यदायिन्यै नमः ।
ॐ सत्यसन्धायै नमः ।
ॐ सागरमेखलायै नमः ।
ॐ दीक्षितायै नमः ।
ॐ दैत्यशमन्यै नमः ।
ॐ सर्वलोकवशङ्कर्यै नमः ।
ॐ सर्वार्थदात्र्यै नमः ।
ॐ सावित्र्यै नमः ॥ ७०० ॥
ॐ सच्चिदानन्दरूपिण्यै नमः ।
ॐ देशकालापरिच्छिन्नायै नमः ।
ॐ सर्वगायै नमः ।
ॐ सर्वमोहिन्यै नमः ।
ॐ सरस्वत्यै नमः ।
ॐ शास्त्रमय्यै नमः ।
ॐ गुहाम्बायै नमः ।
ॐ गुह्यरूपिण्यै नमः ।
ॐ सर्वोपाधिविनिर्मुक्तायै नमः ।

ॐ सदाशिवपतिव्रतायै नमः ।।७१०।।
ॐ सम्प्रदायेश्वर्यै नमः ।
ॐ साध्व्यै नमः ।
ॐ गुरुमण्डलरूपिण्यै नमः ।
ॐ कुलोत्तीर्णायै नमः ।
ॐ भगाराध्यायै नमः ।
ॐ मायायै नमः ।
ॐ मधुमत्यै नमः ।
ॐ मह्यै नमः ।
ॐ गणाम्बायै नमः ।
ॐ गुह्यकाराध्यायै नमः ।।७२०।।
ॐ कोमलाङ्ग्यै नमः ।
ॐ गुरुप्रियायै नमः ।
ॐ स्वतन्त्रायै नमः ।
ॐ सर्वतन्त्रेश्यै नमः ।
ॐ दक्षिणामूर्तिरूपिण्यै नमः ।
ॐ सनकादिसमाराध्यायै नमः ।
ॐ शिवज्ञानप्रदायिन्यै नमः ।
ॐ चित्कलायै नमः ।
ॐ आनन्दकलिकायै नमः ।
ॐ प्रेमरूपायै नमः ।।७३०।।
ॐ प्रियङ्कर्यै नमः ।
ॐ नामपारायणप्रीतायै नमः ।
ॐ नन्दिविद्यायै नमः ।
ॐ नटेश्वर्यै नमः ।

ॐ मिथ्याजगदधिष्ठानायै नमः ।
ॐ मुक्तिदायै नमः ।
ॐ मुक्तिरूपिण्यै नमः ।
ॐ लास्यप्रियायै नमः ।
ॐ लयकर्यै नमः ।
ॐ लज्जायै नमः ।।७४०।।
ॐ रम्भादिवन्दितायै नमः ।
ॐ भवदावसुधावृष्ट्यै नमः ।
ॐ पापारण्यदवानलायै नमः ।
ॐ दौर्भाग्यतूलवातूलायै नमः ।
ॐ जराध्वान्तरविप्रभायै नमः ।
ॐ भाग्याब्धिचन्द्रिकायै नमः ।
ॐ भक्तचित्तकेकिघनाघनायै नमः ।
ॐ रोगपर्वतदम्भोलये नमः ।
ॐ मृत्युदारुकुठारिकायै नमः ।
ॐ महेश्वर्यै नमः ।। ७५०।।
ॐ महाकाल्यै नमः ।
ॐ महाग्रासायै नमः ।
ॐ महाशनायै नमः ।
ॐ अपर्णायै नमः ।
ॐ चण्डिकायै नमः ।
ॐ चण्डमुण्डासुरनिषूदिन्यै नमः ।
ॐ क्षराक्षरात्मिकायै नमः ।
ॐ सर्वलोकेश्यै नमः ।
ॐ विश्वधारिण्यै नमः ।

ॐ त्रिवर्गदात्र्यै नमः ।। ७६० ।।
ॐ सुभगायै नमः ।
ॐ त्र्यम्बकायै नमः ।
ॐ त्रिगुणात्मिकायै नमः ।
ॐ स्वर्गापवर्गदायै नमः ।
ॐ शुद्धायै नमः ।
ॐ जपापुष्पनिभाकृतये नमः ।
ॐ ओजोवत्यै नमः ।
ॐ द्युतिधरायै नमः ।
ॐ यज्ञरूपायै नमः ।
ॐ प्रियव्रतायै नमः ।। ७७० ।।
ॐ दुराराध्यायै नमः ।
ॐ दुराधर्षायै नमः ।
ॐ पाटलीकुसुमप्रियायै नमः ।
ॐ महत्यै नमः ।
ॐ मेरुनिलयायै नमः ।
ॐ मन्दारकुसुमप्रियायै नमः ।
ॐ वीराराध्यायै नमः ।
ॐ विराड्रूपायै नमः ।
ॐ विरजायै नमः ।
ॐ विश्वतोमुख्यै नमः ।। ७८० ।।
ॐ प्रत्यग्रूपायै नमः ।
ॐ पराकाशायै नमः ।
ॐ प्राणदायै नमः ।
ॐ प्राणरूपिण्यै नमः ।
ॐ मार्तण्डभैरवाराध्यायै नमः ।

ॐ मन्त्रिणीन्यस्तराज्यधुरे नमः ।
ॐ त्रिपुरेश्यै नमः ।
ॐ जयत्सेनायै नमः ।
ॐ निस्त्रैगुण्यायै नमः ।
ॐ परापरायै नमः ॥७९०॥
ॐ सत्यज्ञानानन्दरूपायै नमः ।
ॐ सामरस्यपरायणायै नमः ।
ॐ कपर्दिन्यै नमः ।
ॐ कलामालायै नमः ।
ॐ कामदुहे नमः ।
ॐ कामरूपिण्यै नमः ।
ॐ कलानिधये नमः ।
ॐ काव्यकलायै नमः ।
ॐ रसज्ञायै नमः ।
ॐ रसशेवधये नमः ॥८००॥
ॐ पुष्टायै नमः ।
ॐ पुरातनायै नमः ।
ॐ पूज्यायै नमः ।
ॐ पुष्करायै नमः ।
ॐ पुष्करेक्षणायै नमः ।
ॐ परस्मै ज्योतिषे नमः ।
ॐ परस्मै धाम्ने नमः ।
ॐ परमाणवे नमः ।
ॐ परात्परायै नमः ।
ॐ पाशहस्तायै नमः ॥८१०॥
ॐ पाशहन्त्र्यै नमः ।

ॐ परमन्त्रविभेदिन्यै नमः ।
ॐ मूर्तायै नमः ।
ॐ अमूर्तायै नमः ।
ॐ अनित्यतृप्तायै नमः ।
ॐ मुनिमानसहंसिकायै नमः ।
ॐ सत्यव्रतायै नमः ।
ॐ सत्यरूपायै नमः ।
ॐ सर्वान्तर्यामिन्यै नमः ।
ॐ सत्यै नमः ।।८२०।।
ॐ ब्रह्माण्यै नमः ।
ॐ ब्रह्मजनन्यै नमः ।
ॐ बहुरूपायै नमः ।
ॐ बुधार्चितायै नमः ।
ॐ प्रसवित्र्यै नमः ।
ॐ प्रचण्डायै नमः ।
ॐ आज्ञायै नमः ।
ॐ प्रतिष्ठायै नमः ।
ॐ प्रकटाकृतये नमः ।
ॐ प्राणेश्वर्यै नमः ।।८३०।।
ॐ प्राणदात्र्यै नमः ।
ॐ पञ्चाशत्पीठरूपिण्यै नमः ।
ॐ विशृङ्खलायै नमः ।
ॐ विविक्तस्थायै नमः ।
ॐ वीरमात्रे नमः ।
ॐ वियत्प्रसवे नमः ।
ॐ मुकुन्दायै नमः ।

ॐ मुक्तिनिलयायै नमः ।
ॐ मूलविग्रहरूपिण्यै नमः ।
ॐ भावज्ञायै नमः ॥८४०॥
ॐ भवरोगघ्न्यै नमः ।
ॐ भवचक्रप्रवर्तिन्यै नमः ।
ॐ छन्दःसारायै नमः ।
ॐ शास्त्रसारायै नमः ।
ॐ मन्त्रसारायै नमः ।
ॐ तलोदर्यै नमः ।
ॐ उदारकीर्तये नमः ।
ॐ उद्दामवैभवायै नमः ।
ॐ वर्णरूपिण्यै नमः ।
ॐ जन्ममृत्युजरातप्तजनविश्रान्तिदायिन्यै नमः ॥ ८५०॥
ॐ सर्वोपनिषदुद्घुष्टायै नमः ।
ॐ शान्त्यतीतायै नमः ।
ॐ कलात्मिकायै नमः ।
ॐ गम्भीरायै नमः ।
ॐ गगनान्तःस्थायै नमः ।
ॐ गर्वितायै नमः ।
ॐ गानलोलुपायै नमः ।
ॐ कल्पनारहितायै नमः ।
ॐ काष्ठायै नमः ।
ॐ अकान्तायै नमः ॥८६०॥
ॐ कान्तार्द्धविग्रहायै नमः ।
ॐ कार्यकारणनिर्मुक्तायै नमः ।
ॐ कामकेलितरङ्गितायै नमः ।

ॐ कनत्कनकताटङ्कायै नमः ।
ॐ लीलाविग्रहधारिण्यै नमः ।
ॐ अजायै नमः ।
ॐ क्षयविनिर्मुक्तायै नमः ।
ॐ मुग्धायै नमः ।
ॐ क्षिप्रप्रसादिन्यै नमः ।
ॐ अन्तर्मुखसमाराध्यायै नमः ॥८७०॥
ॐ बहिर्मुखसुदुर्लभायै नमः ।
ॐ त्रय्यै नमः ।
ॐ त्रिवर्गनिलयायै नमः ।
ॐ त्रिस्थायै नमः ।
ॐ त्रिपुरमालिन्यै नमः ।
ॐ निरामयायै नमः ।
ॐ निरालम्बायै नमः ।
ॐ स्वात्मारामायै नमः ।
ॐ सुधास्त्रुत्यै नमः ।
ॐ संसारपङ्कनिर्मग्नसमुद्धरणपण्डितायै नमः ॥८८०॥
ॐ यज्ञप्रियायै नमः ।
ॐ यज्ञकर्त्र्यै नमः ।
ॐ यजमानस्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ धर्माधारायै नमः ।
ॐ धनाध्यक्षायै नमः ।
ॐ धनधान्यविवर्धिन्यै नमः ।
ॐ विप्रप्रियायै नमः ।
ॐ विप्ररूपायै नमः ।
ॐ विश्वभ्रमणकारिण्यै नमः ।

ॐ विश्वग्रासायै नमः ॥ ८९० ॥
ॐ विद्रुमाभायै नमः ।
ॐ वैष्णव्यै नमः ।
ॐ विष्णुरूपिण्यै नमः ।
ॐ अयोन्यै नमः ।
ॐ योनिनिलयायै नमः ।
ॐ कूटस्थायै नमः ।
ॐ कुलरूपिण्यै नमः ।
ॐ वीरगोष्ठीप्रियायै नमः ।
ॐ वीरायै नमः ।
ॐ नैष्कर्म्यायै नमः ॥ ९०० ॥
ॐ नादरूपिण्यै नमः ।
ॐ विज्ञानकलनायै नमः ।
ॐ कल्यायै नमः ।
ॐ विदग्धायै नमः ।
ॐ बैन्दवासनायै नमः ।
ॐ तत्त्वाधिकायै नमः ।
ॐ तत्त्वमय्यै नमः ।
ॐ तत्त्वमर्थस्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ सामगानप्रियायै नमः ।
ॐ सौम्यायै नमः ॥ ९१० ॥
ॐ सदाशिवकुटुम्बिन्यै नमः ।
ॐ सव्यापसव्यमार्गस्थायै नमः ।
ॐ सर्वापद्विनिवारिण्यै नमः ।
ॐ स्वस्थायै नमः ।
ॐ स्वभावमधुरायै नमः ।

ॐ धीरायै नमः ।
ॐ धीरसमर्चितायै नमः ।
ॐ चैतन्यार्घ्यसमाराध्यायै नमः ।
ॐ चैतन्यकुसुमप्रियायै नमः ।
ॐ सदोदितायै नमः ।।१२०।।
ॐ सदातुष्टायै नमः ।
ॐ तरुणादित्यपाटलायै नमः ।
ॐ दक्षिणादक्षिणाराध्यायै नमः ।
ॐ दरस्मेरमुखाम्बुजायै नमः ।
ॐ कौलिनीकेवलायै नमः ।
ॐ अनर्घ्यकैवल्यपददायिन्यै नमः ।
ॐ स्तोत्रप्रियायै नमः ।
ॐ स्तुतिमत्यै नमः ।
ॐ श्रुतिसंस्तुतवैभवायै नमः ।
ॐ मनस्विन्यै नमः ।।१३०।।
ॐ मानवत्यै नमः ।
ॐ महेश्यै नमः ।
ॐ मङ्गलाकृत्यै नमः ।
ॐ विश्वमात्रे नमः ।
ॐ जगद्धात्र्यै नमः ।
ॐ विशालाक्ष्यै नमः ।
ॐ विरागिण्यै नमः ।
ॐ प्रगल्भायै नमः ।
ॐ परमोदारायै नमः ।
ॐ परमोदायै नमः ।।१४०।।
ॐ मनोमय्यै नमः ।

ॐ व्योमकेश्यै नमः ।
ॐ विमानस्थायै नमः ।
ॐ वज्रिण्यै नमः ।
ॐ वामकेश्वर्यै नमः ।
ॐ पञ्चयज्ञप्रियायै नमः ।
ॐ पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिन्यै नमः ।
ॐ पञ्चम्यै नमः ।
ॐ पञ्चभूतेश्यै नमः ।
ॐ पञ्चसङ्ख्योपचारिण्यै नमः ।
ॐ शाश्वत्यै नमः ।।९५०।।
ॐ शाश्वतैश्वर्यायै नमः ।
ॐ शर्मदायै नमः ।
ॐ शम्भुमोहिन्यै नमः ।
ॐ धरायै नमः ।
ॐ धरसुतायै नमः ।
ॐ धन्यायै नमः ।
ॐ धर्मिण्यै नमः ।
ॐ धर्मवर्द्धिन्यै नमः ।
ॐ लोकातीतायै नमः ।
ॐ गुणातीतायै नमः ।।९६०।।
ॐ सर्वातीतायै नमः ।
ॐ शमात्मिकायै नमः ।
ॐ बन्धूककुसुमप्रख्यायै नमः ।
ॐ बालायै नमः ।
ॐ लीलाविनोदिन्यै नमः ।
ॐ सुमङ्गल्यै नमः ।

ॐ सुखकर्यै नमः ।
ॐ सुवेषाढ्यायै नमः ।
ॐ सुवासिन्यै नमः ।
ॐ सुवासिन्यर्चनप्रीतायै नमः ।।१७०।।
ॐ आशोभनायै नमः ।
ॐ शुद्धमानसायै नमः ।
ॐ बिन्दुतर्पणसन्तुष्टायै नमः ।
ॐ पूर्वजायै नमः ।
ॐ त्रिपुराम्बिकायै नमः ।
ॐ दशमुद्रासमाराध्यायै नमः ।
ॐ त्रिपुराश्रीवशङ्कर्यै नमः ।
ॐ ज्ञानमुद्रायै नमः ।
ॐ ज्ञानगम्यायै नमः ।।१८०।।
ॐ ज्ञानज्ञेयस्वरूपिण्यै नमः ।
ॐ योनिमुद्रायै नमः ।
ॐ त्रिखण्डेश्यै नमः ।
ॐ त्रिगुणायै नमः ।
ॐ अम्बायै नमः ।
ॐ त्रिकोणगायै नमः ।
ॐ अनघायै नमः ।
ॐ अद्भुतचारित्रायै नमः ।
ॐ वाञ्छितार्थप्रदायिन्यै नमः ।
ॐ अभ्यासातिशयज्ञातायै नमः ।।१९०।।
ॐ षडध्वातीतरूपिण्यै नमः ।
ॐ अव्याजकरुणामूर्तये नमः ।

ॐ अज्ञानध्वान्तदीपिकायै नमः ।
ॐ आबालगोपविदितायै नमः ।
ॐ सर्वानुल्लङ्घ्यशासनायै नमः ।
ॐ श्रीचक्रराजनिलयायै नमः ।
ॐ श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।
ॐ श्रीशिवायै नमः ।
ॐ शिवशक्त्यैक्यरूपिण्यै नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ललिताम्बिकायै नमः ।। १००० ।।

।। इति श्रीललितासहस्रनामावलिः सम्पूर्णम् ।।

श्री मातृ-मन्दिर आरती

नीराजनं सुमंगल्यं कर्पूरेण समन्वितम्।
चन्द्रार्कवह्निसदृशं महादेवी नमोऽस्तु ते।।

ॐ जग जननी जय जय, माँ जग जननी जय जय।
भयहारिणि भवतारिणि भवभामिनि जय जय।।१।।ॐ जग०

तू ही सत-चित-सुखमय, शुद्ध ब्रह्मरूपा।
सत्य सनातन सुन्दर पर-शिव सुर-भूपा।।२।।ॐ जग०

आदि अनादि अनामय, अविचल अविनाशी।
अमल अनन्त अगोचर अज आनँदराशी।।३।।ॐ जग०

अविकारी अघहारी, अकल कलाधारी।
कर्ता विधि भर्ता हरि, हर सँहारकारी।।४।।ॐ जग०

तू विधिवधू, रमा तू, उमा महामाया।
मूल प्रकृति विद्या तू, तू जननी जाया।।५।।ॐ जग०

राम, कृष्ण, तू, सीता, व्रजरानी राधा।
तू वाञ्छाकल्पद्रुम, हारिणि सब बाधा।।६।।ॐ जग०

दश विद्या, नव दुर्गा, नानाशस्त्रकरा।
अष्टमातृका, योगिनि, नव नव रूप धरा।।७।।ॐ जग०

तू परधामनिवासिनि, महाविलासिनि तू।
तु ही श्मशानविहारिणि, ताण्डवलासिनि तू।।८।।ॐ जग०

सुर-मुनि-मोहिनि, सौम्या, तू शोभाऽऽधारा।
विवसन विकट-सरूपा, प्रलयमयी धारा।।९।।ॐ जग०

तू ही स्नेह-सुधामयि, तू अति गरलमना।
रत्नविभूषित तू ही, तू ही अस्थि-तना।।१०।।ॐ जग०

मूलाधारनिवासिनि, इह-पर-सिद्धिप्रदे ।
कालातीता काली, कमला तू वरदे ।।११।।ॐ जग०

शक्ति शक्तिधर तू ही, नित्य अभेदमयी।
भेदप्रदर्शिनि वाणी, विमले! वेदत्रयी।।१२।।ॐ जग०

हम अति दीन दुखी, माँ! विपद-जाल घेरे।
हैं कपूत अति कपटी, पर बालक तेरे।।१३।।ॐ जग०

निज स्वभाव-वश जननी! दया-दृष्टि कीजै।
करुणा कर करुणामयि! चरण-शरण दीजै ।।१४।।ॐ जग०

कीर्तन

दुर्गति नाशिनि दुर्गे जय जय।
काल विनाशिनि काली जय जय।।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय।
राधा रुक्मिणि सीता जय जय।।

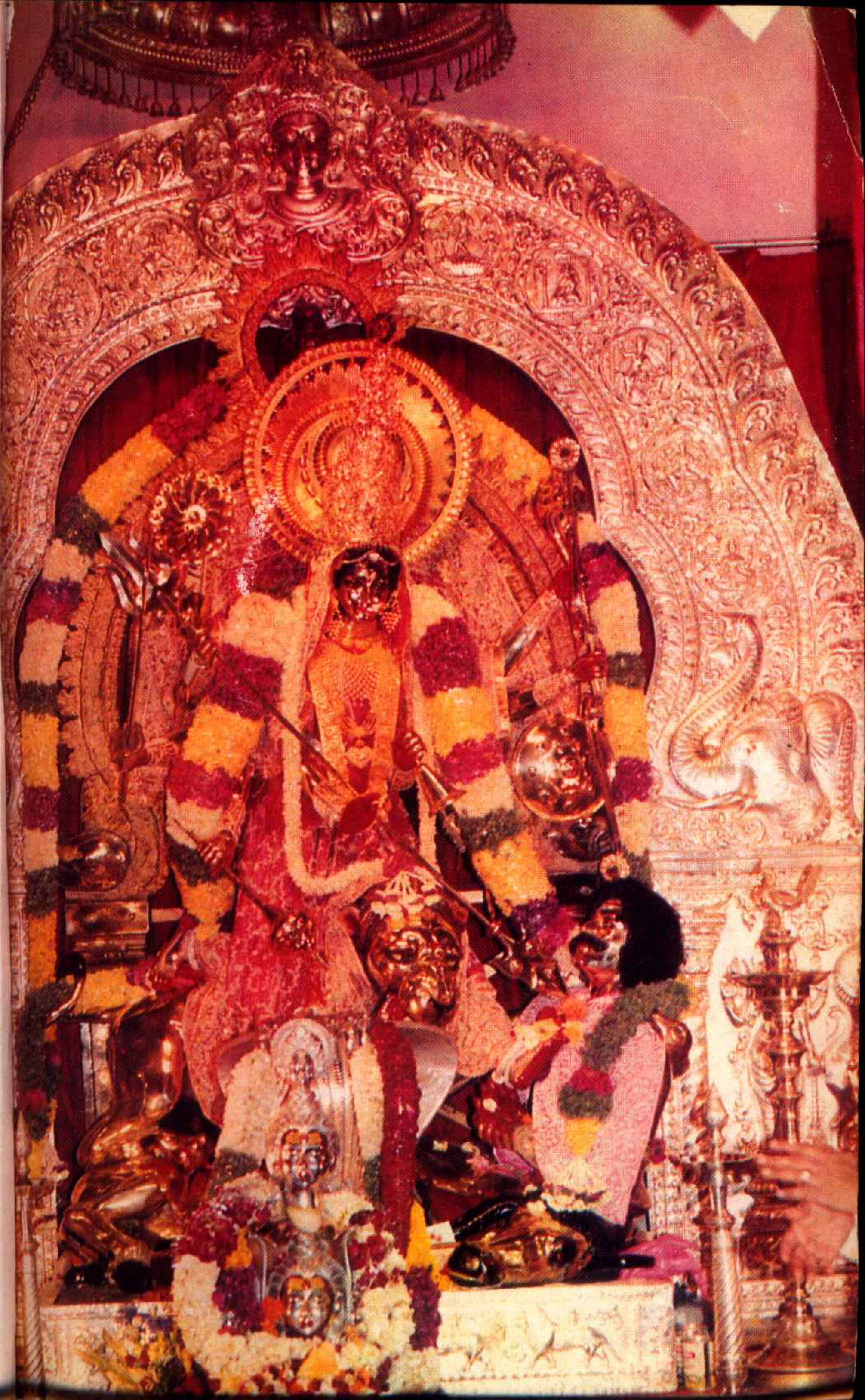

श्री आद्या कात्यायनी शक्तिपीठ मंदिर